होलकर-हिन्दीग्रन्थमाला पुष्प १७ वां

कविवरेण्य

श्रीयुत नान्हालाल दलपतराम-

कृत,

उषा

(अनुपम-कल्पनामय भावपूर्ण गद्यकाव्य)

हिन्दीकार —

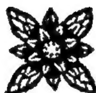
श्रीगिरिधरशर्म्माजी नवरत्न.

प्रकाशक.—
राव डाक्टर श्रीसरयूप्रसादजी बहादुर,
मन्त्री " मध्यभारतहिन्दीसाहित्यसमिति "
तुकोगंज-इंदोर

पुस्तकप्राप्तिस्थान —
प्रकाशक, और-
श्रीईश्वरशर्म्माविद्यार्थी
नवरत्न-सरस्वती-भवन,
झालरापाटन-राजपूताना

प्रथमवार } ज्येष्ठ संवत् १९८१ { मूल्य १)

प्रकाशक —
राव ब॰ श्रीसरयूप्रसादजी बहादुर,
मन्त्री " मध्यभारतहिन्दीसाहित्यसमिति "
तुकोगंज-इंदोर.



मुद्रक,
रा. चिंतामण सखाराम देवळे,
मुंबईवैभव प्रेस, सँडर्स्ट रोड,
गिरगांव-मुंबई —

समर्पण.

उन धन्यतम दम्पतियोंको

जिनके

स्नेह-सञ्चार, आदर्श

हैं,

उषा

सानन्द समर्पित है

गिरिधर

दोशब्द.





न्हानालाल दलपतराम भाईको नाम निर्देशकर बतलाने की अब मेरे विचारमें कोई आवश्यकता नहीं। जिन्होंने आपके जयाजयन्त को एक बारभी ध्यान देकर पढा है वे सानन्दाश्चर्यचकित हुए है । उसी आकाशविहारी कविकी यह सुन्दर कृति हिन्दी जनताके सन्मुख उपस्थित है। जो इसे पढेगा अनुपम गद्यकाव्यका आनन्द लूटेगा और ऐसी ऐसी प्रेरणायें पायगा कि उसका गृह संसार स्नेहके पीयूषसे भरा, अमर, आनन्दसरोवर होकर रहेगा। विशेष लिखने की मुझे आवश्यकता नहीं, हिन्दीजन रससिद्ध, पीयूषनिधि, कविकलाधर न्हानालालकी कलमकिरणावलीसे प्रकाशित इस स्नेहतरङ्गिणी उषामें अवगाहन कर आनन्द लूटें और मेरी त्रुटियोंको क्षमा करें.

नवरत्न सरस्वती भवन
झालरा पाटन
ज्ये शु ८ स १९८१



गिरिधर.

प्रस्तावना.

प्रकृति और पुरुषके एक अभ्यासीने गाया है कि 'नरनारी दो दीखते दिलकी डोरी एक'।

यह डोरी क्या है? कैसी है? किसकी है? ये सृजन-प्राचीन प्रश्न हैं। मनुष्यके हृदय और बुद्धिके जितने ही प्राचीन इनके गहनभेद हैं। विश्वतोमुखी विराटके मुखके आडे पड़े हुए किसीकिसी परदेको जैसे दार्शनिक या पैगम्बर खोलते है वैसे ही इस अनेक अगी महाप्रश्नकी भी किसीकिसी कलाको कवि या रसमीमांसक प्रगट करते हैं। रस, रसिकता और रसकी लीला सुन्दरी और सौन्दर्य, और प्रियजनकी प्रियतम भावनाके कोई अन्वेषण, सर्वदेशी या सर्वग्राही-परिपूर्ण न होंगे। वे सदा अपूर्ण ही रहेंगे और नये नये कलाविधायक उसे पूर्ण करनेकी कोशिश करतेही रहेंगे। चेतनशास्त्रके विपुल विज्ञानीजन जब नवीन रसमीमांसा रचेंगे और नायकनायका-भेदके रसशास्त्रके प्रकरण भविष्यमें फिर लिखे जाँयगे तब, स्त्रीपुरुषके रसपूर्ण गुरुत्वाकर्षणका महाप्रश्न नई रीतिसे ही अब चर्चा किया जायगा। जगतकी सब प्रजाओंमेंके काव्य नाटक और उपन्यासोंके इस सर्वसचारी विषयके, जब कोई भविष्यतका वात्स्यायन, नवीन सूत्र लिखेगा तब मानवलोक में अद्भुत प्रकाश अवतीर्ण होंगे। हृदयकी स्थूल क्रियाओंके दर्शन जैसे परदेकी ओटसे ही होते हैं वैसेही हृदयकी सूक्ष्म क्रियाओंकेभी दर्शन पटकी ओटसे ही होते हैं। हृदयमन्दिरके रसज्ञ और रहस्यके भेदी आन्तरिक पुजारियोंकी गोप्रवेल सदा पत्र-पुष्पसे हरीभरी बढती ही रहती है और रसदेवताकी उपासनाकी अनन्तशिख आरती के कितने ही दीपक इस वेलके प्रत्येक पानपर और प्रत्येक फूलपर प्रगट होते हैं। अनादि-अनन्त सौंदर्यपूजनकी आरती की एक ज्योति प्रकटानेका यह एक यत्न है। दिन और रातकी शाखायें गुथ कर सन्ध्याकी छाया फैलाती है, वैसेही स्थूल और सूक्ष्मके जड और चेतनके किरण यूथ जहां गुथते हैं उस सान्ध्य देशकी यह कथा है। आत्माकी यह देवकथा नहीं है, देहकी यह स्थूल कथा नहीं है, आत्मा और देह उभयधारी मनुष्यजातिकी यह मानवकथा है। कोई भीष्मकी यह मनकथा नहीं है, सकल ससारियोंकी गृहकथा है। ‡ जयाजयन्त नाटक किसी विरलतर आत्मलग्नमिमग्न साधुका माध्याश्रम था, यह सृजन-जूनी कथनी सब गृहस्थाश्रमियोंके लिये फुलवाडी है। और यह गद्यमयी कथना केवल रेखाचित्र है, ध्वनिसूचन है, तर्जनीनिर्देश है। परन्तु व्यजना और ध्वनि रसमीमांसाके चतुर मीमांसकों के लिये क्या कुछ कम हैं?

नान्हालाल कवि

---

‡ जिन्हें इस अद्भुत नाटकको देखना हो वे राजपूतानाहिन्दीसभासे प्रकाशित हुए नाटक को हमसे मगालें मूल्य १॥) ईश्वरशर्मा

दोशब्द.





नालाल दलपतराम भाईको नाम निर्देशकर बतलाने की अब मेरे विचारमें कोई आवश्यकता नहीं। जिन्होंने आपके जयाजयन्त को एक बारभी ध्यान देकर पढा है वे सानन्दाश्चर्यचकित हुए है । उसी आकाशविहारी कविकी यह सुन्दर कृति हिन्दी जनताके सन्मुख उपस्थित है। जो इसे पढेगा अनुपम गद्यकाव्यका आनन्द लूटेगा और ऐसी ऐसी प्रेरणायें पायगा कि उसका गृह संसार स्नेहके पीयूषसे भरा, अमर, आनन्दसरोवर होकर रहेगा। विशेष लिखने की मुझे आवश्यकता नहीं, हिन्दीजन रससिद्ध, पीयूषनिधि, कविकलाधर न्हानालालकी कलमकिरणावलीसे प्रकाशित इस स्नेहतरङ्गिणी उषामें अवगाहन कर आनन्द लूटें और मेरी त्रुटियोंको क्षमा करें

नवरत्न सरस्वती भवन
झालरा पाटन
ज्ये शु ८ स १९८१  गिरिधर.

प्रस्तावना.

प्रकृति और पुरुषके एक अभ्यासीने गाया है कि 'नरनारी दो दीखते दिलकी डोरी एक'।

यह डोरी क्या है ? कैसी है ? किसकी है ? ये सृजन-प्राचीन प्रश्न हैं। मनुष्यके हृदय और बुद्धिके जितने ही प्राचीन इनके गहनभेद हैं। विश्वतोमुखी विराटके मुखके आडे पड़े हुए किसीकिसी परदेको जैसे दार्शनिक या पैगम्बर खोलते है वैसे ही इस अनेक अंगी महाप्रश्नकी भी किसीकिसी कलाको कवि या रसमीमांसक प्रगट करते हैं। रस, रसिकता और रसकी लीला सुन्दरी और सौन्दर्य, और प्रियजनकी प्रियतम भावनाके कोई अन्वेषण, सर्वदेशी या सर्वग्राही-परिपूर्ण न होंगे। वे सदा अपूर्ण ही रहेंगे और नये नये कलाविधायक उसे पूर्ण करनेकी कोशिश करतेही रहेंगे। चेतनशास्त्रके विपुल विज्ञानीजन जब नवीन रसमीमांसा रचेंगे और नायकनायका-भेदके रसशास्त्रके प्रकरण भविष्यमें फिर लिखे जांयगे तब, स्त्रीपुरुषके रसपूर्ण गुरुत्वाकर्षणका महाप्रश्न नई रीतिसे ही अब चर्चा किया जायगा। जगतकी सब प्रजाओंमेंके काव्य नाटक और उपन्यासोंके इस सर्वसंचारी विषयके, जब कोई भविष्यतका वात्स्यायन, नवीन सूत्र लिखेगा तब मानवलोकमें अद्भुत प्रकाश अवतीर्ण होंगे। हृदयकी स्थूल क्रियाओंके दर्शन जैसे परदेकी ओटसे ही होते हैं वैसेही हृदयकी सूक्ष्म क्रियाओंकेभी दर्शन पटकी ओटसे ही होते हैं। हृदयमन्दिरके रसज्ञ और रहस्यके भेदी आन्तरिक पुजारियोंकी गोम्रवेल सदा पत्र पुष्पसे हरीभरी बढती ही रहती है और रसदेवताकी उपासनाकी अनन्तशिख आरती के कितने ही दीपक इस बेलके प्रत्येक पानपर और प्रत्येक फूलपर प्रगट होते हैं। अनादि-अनन्त सौंदर्यपूजनकी आरती की एक ज्योति प्रकटानेका यह एक यत्न है। दिन और रातकी शाखायें गुथ कर सन्ध्याकी छाया फैलाती है, वैसेही स्थूल और सूक्ष्मके जड और चेतनके किरण-यूथ जहां गुथते हैं उस सान्ध्य देशकी यह कथा है। आत्माकी यह देवकथा नहीं है, देहकी यह स्थूल कथा नहीं है, आत्मा और देह उभयधारी मनुष्यजातिकी यह मानवकथा है। कोई भीष्मकी यह व्रतकथा नहीं है, सकल संसारियोंकी गृहकथा है। ‡ जयाजयन्त नाटक किसी विरलत्तर आत्मलग्ननिमग्न साधुका साध्वाश्रम था, यह सृजन-जूनी कथनी सब गृहस्थाश्रमियोंके लिये फुलवाड़ी है। और यह गद्यमयी कथना केवल रेखाचित्र है, ध्वनिसूचन है, तर्जनीनिर्देश है। परन्तु व्यञ्जना और ध्वनि रसमीमांसाके चतुर मीमांसकों के लिये क्या कुछ कम हैं ?

न्हानालाल कवि

---

‡ जिन्हें इस अद्भुत नाटकको देखना हो वे राजपूताना हिन्दीसभासे प्रकाशित हुए नाटक को - मूल्य १॥)

शरद्पूर्णिमाकी एक रातको छह महीनेकी रासरात्रि करनेका कहा गया है उस ऋचामें इस ऋतुका वर्णन है। देवभी इस ऋतुको चाहते हैं। लक्ष्मीजी के साथ विष्णु भगवान् स्मित करते थे और उस स्मितमें-से सृजन सरजे गये, उस स्मितकी और स्मितके सृजनकी थी यह ऋतु। इस ऋतुमें कुछ-कुछ अजनवी नव-नव सृजन सरजे गये थे। मनुष्य जातिके मनुष्यत्वकी यह ऋतु थी। यह वह ऋतु थी कि जो उदय हुए बाद कभी अस्त नहीं होता, जिसमें मानवपुष्प अद्भुत और अलौकिक रीतिसे खिलते हैं, जीवनकी यह अनन्त वसन्त थी।

जिस ऋतुमें देव पृथ्वीपर खेलनेको अवतीर्ण होते हैं यह वह ऋतु थी। आत्माके आनन्दसे आयुष्य भरमें यह एकही ऋतु अखंड प्रकाशित होती है।

ब्रह्मचर्य के बारह वर्षोंमें, ए ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणियो ! एकएक वर्षमें इस रामायणके एकएक कांडको पढना और विचारना, तुम्हें वही प्राप्त होगा कि जिसे तुम्ह खोजते हो।

उषा

प्रकरण १ ला.



उस रातको मुझे उसके प्रथम दर्शन हुए, मानो तारिकाओंसे घिरा हुआ चन्द्रमाही न हो।

उस रातको मुझे जिन्दगीके भेदकी कुछ झाकी हुई, कुछ मुमुक्षुकी जिज्ञासा जागरित हुई, और कुछ जीवनके अमृतकी प्यास लगी।

कितनीही बातें ऐसी होती है कि उन्हें भूलना सहज नहीं होता। उस घटनाको हुए एक चिरकाल व्यतीत हो गया है परन्तु ऐसा जान पडता है कि अभी हालही घटित न हुई हो! कालकी महानदी कितनीही बडी क्यों न हो तथापि उसके विशाल पाटको उल्लंघन करनेके लिये स्मरणके पुलकी एक कमान बस है। गरमी बीत गई थी और बरसात पूरी पूरी बैठी न थी। वह एक ऐसा संधिका समय था कि जो-महा भाग्यके ज्वारके समान-मनुष्य जीवनमें किसी किसी समयही आता है।

ग्रीष्मकी प्रचण्डता बीत गई थी। छायामेंभी उष्मामापकयन्त्र ११८ अंश ताप नापता था। लोग कहते थे कि ऐसी प्रचण्ड गरमी पच्चीस वर्षमें कभी न गिरी थी। मुझे जान पडता है कि ग्रीष्मने चुन चुनकर तापको कहीं-न-कहीं इकट्ठा कर रक्खा था और उस रातको मेरे अन्तर में भर दिया। वह देव हुताश तब था वैसाही आजभी प्रज्वलितही है। यदि किसीके पास अन्तरका उष्मामापक यन्त्र होवे तो आवे और मेरे अन्तरकी उष्माको नाप ले। सूर्यके ऐसे उसके नयनोंमेंसे वह प्रचण्ड सूर्यज्वाला प्रकट हुई और मेरे हृदयमें समा गई। मेरे अन्त करणके

अग्निकुण्डमें इस अग्निहोत्रके देवाग्निको मैनेमी बडे जतनसे रख छोडा है और आजभी उसका पूजन करता हू ।

परन्तु अभीतक पूरी पूरी बरसात प्रारम्भ न हुई थी । निरन्तरका साथी होनेपरभी ब्रह्मवियोगी ब्रह्माण्ड जब मूसलधार आसू बरसाता है वह बरसात अभीतक प्रारम्भ नहीं हुई थी । जगतकी जलनको दूर करने और ऊष्माके सन्तापको मिटाने योग्य एक दो पानी होगये थे । आषाढी बद्दलोंकी गाढताको देखकर लोगोंको सान्त्वना होगई थी कि आसमानमें जलगर्भका परिपाक होगया है ।

अचरजसे भरा हुआ जैसा वह मेरा दिन बीता था वैसेही अचरज भरी वह मेरी रात बीती ।

पूर्णिमाकी पिछली रात और प्रतिपद्के प्रभातमें वह घटना हुई । गगनके परदे हटे और भीतरसे सौभाग्यगङ्गा मेरे जीवनमें बहने लगी ।

ब्यालू करके मै नींदकी गोदमें सो गया और घडीभरके लिये जगत और जगतके जजालको भूल गया । विस्मरणकी काली चादर मैने ओढ ली ।

आकाशपर चाद अठखेलियां कर रहा था और चादनी छिटकी हुई थी । मै उसे नहीं देखता परन्तु अनेक आखें उसे निहार रहींथीं और वन्दना कर रहींथीं । बद्दलकी-सी सीढियोंको चढते-चढते ब्रह्माण्डकी किलङ्गीके ऐसा चन्द्रमा पृथ्वीके माथे पर आगया ।

उस रातको बालिकाओंका उत्सव था । जगतके सोजानेके बाद, रसजिज्ञासुलोचनोंको छोडकर और कोई न देखरहा हो ऐसे समय, नगरकी बालिकाओंके कौमार-अभिलाषका उदधि उछल रहाथा और उसकी हिलोरें चादनीकी समुज्ज्वल लहरियों से भी विशेष उजलींथीं ।

घर-घरकी बालिकायें नक्षत्रमडलके समान एकत्रित होकर गातींथीं और गाती-गाती सादा नाच नाच रही थी, मानो संसारके उपवनकी लतायें झूला ही न झूल रही हों !

मैं तो उस समय निद्रा-मूर्छित था, परन्तु नगरका हौंस भरा हुआ रसिक-यौवन जग रहाथा और कहीं कहीं थोडा थोडा रसकी बैछारोंसे छींटा जाता था।

बालिकाओंकी मानो यह वसन्त पचमी थी, उनके उरमें और अगमें बसन्तकी बहार छारहीथी।

बरसातके एक-दो झपाटोंने पृथ्वीको और बालाओंको भिगो दिया था। छोटे-छोटे नये अङ्कुर पृथ्वीके और उनके अन्तरमें फूट निकले थे। उनकी नाडियोंमे रसकी बारीकबारीक शिराओंके सूक्ष्म-सूक्ष्म स्पन्दन होते थे।

आधीरात बीत जानेपर चांदकी किरणें चुपचाप मेरे कमरेमें आई और अमृताङ्गुलियोंसे गुदगुदी चला चला कर मुझे जगाया। मैने अपनी अधखुली आखोंसे पहले गगन में पूर्णिमाके चन्द्रमाके दर्शन किये, मानो विश्वके सौभाग्यका अमृतथाल ही नहो! मानो रजनीके केश-कलापका मकुट-मणि हा नहो! मानो ससार के जीवनका माधुर्य ही न हो! आज कौमारोत्सव था और कुमारिकाके उज्ज्वल मुखके ऐसा उज्ज्वल चन्द्रमा आकाशकी अटारीपर सुहा रहा था।

मै जगा तो दो-चार ओरसे कोयल और मैनाके टहुके आते हुए सुन पड़े। कहीं कहीं पर कोई फाख्ता (डेकड) भी बोलती थी।

मै जगा और चादनी (छत) पर गया। देवोंके देवत्वके थालके ऐसा चाद चमक रहाथा। तेजके सुधाकुम्भके ऐसा वह गगनकी किसी अदृश्य शाखापर मृत्युलोक-निवासियोंके लिये लटक रहा था। नगरका स्त्री कौमार आजकी रात उसकी अमृतधाराओंको झेल झेल कर पान कर रहा था।

देवलोकके इस दैवी मधुपर्कसे मधु टपक रहाथा और ससारी इस पचामृतसे अपने पाचों प्राणोंका पोषण करते थे।

गली-गलीसे गीतके आमन्त्रण आरहेथे परन्तु मैने उनका सत्कार न किया सोचा कि बालिकाओंकी कौमार बगीचीमें जाकर उन खिली हुई कलियोंको लज्जावन्तीकी भांति लज्जासे सङ्कुचित करना कोई धन्य काम नहीं है, खिली हुई कमलकी पँखडियोंके लिये घूघटका सम्पुट करनेका प्रसग लाना पाप है। परन्तु अनुभवने आगे चलकर सिखलाया कि रसपूर्णिमामें प्रफुल्लित हुए कमुद कुछ उलूकोंकी छायासे योंही सकुचित नहीं हो जाया करते।

नन्हीं नन्ही नावोंके ऐसे बालाओंके प्रतिबिम्ब चादनीके जलमें तैरते फिरते थे।

बालाओंके मधुर आमन्त्रण पीछे लौटाये परन्तु विधात्रीकी भाग्यघडीको किसने पीछी लौटाई है? जन्म और मृत्युके क्षणको कोईक विरल महायोगीको छोडकर जैसे और कोई नहीं टाल सकता वैसेही सौन्दर्य स्वयम्बर के मत्स्यवेधकी घडी भी टाले नहीं टलती। इस बातको कोई नहीं जानता कि जीवनवनमें भमते भमते कब वह घडी बाणकी तरह अन्तरके भी ऊडे-अन्तरमें प्राणोंके भी प्राणमें प्रवेश करती है और वहा पर चिरकालका निवास करती है।

मैं चादनीसे नहीं उतरा परन्तु आज मेरे लिये उसीकालका योग था।

मैं चादनीमें ही था और मेरी छोटीसी चादनीका सरोवर चन्द्रिकाके जलसे छला छल भरा हुआ उभरा रहाथा। मेरे पैर उसमें बूडे हुए भीग रहे थे।

गहन दर्दीके चक्करके ऐसा चाद लटकरहाथा मानो पूरव और पच्छिम के दो पलडे लगाकर कोई इस तुलामें जगतको तोल ही न रहा हो! मेरे भाग्यका न जाने कोनसा पलडा इसमें झुकनेको था।

आधीरात ढलगई थी, पिछली रातकी गाढी नींदमें मानवी जगतको सोया हुआ समझकर बडी बडी बालाओंका तारामडल इस समय गली-गली मुहल्ले मुहल्लेके चौकमें खेलनेके लिये निकल पडने लगा था।

एक मीनका राशिमंडल आया। मीनके ऐसे चंचल और लाज भरे नयन थे। वे चमकते हुए कभी नमते कभी फरकते और कभी हटजाते थे। मुखपर मधुर मुसक्यानकी ऊर्मिया उठती थीं। गतिमें माधुर्य था परन्तु कंठमें लज्जाका रव था। पैरभी शरमाते-शरमाते सुरसेके से उठते थे। कौमारके उछलते हुए झरने अभीतक बालाओंके अन्तरमें प्रकट नहीं हुए थे। मुद्रा चकोर थी और गति बाणके ऐसी थी परन्तु बाल-विहंगिनीके प्रथमोड्डयन-की-सी पाँखें लज्जामयी थीं। चन्द्रिकामें तैरती-तैरती वे मधुर लज्जाभरी मछलिया आईं और चलीगईं, अधखिली कलिका-ओंकी पखडियोंके समान कितनीही कुमारिकाओंने साडीको समेट रक्खा था।

कौमार कहते जीवनका चौक, कमरा नहीं। खुले और निखालस दिलसे जो न खेल सके वह कौमारके चौकमें नहीं है परन्तु जीवनकी कोठरियोंमें है। कितनी ही बालायें बालक होतीं ही नहीं है—जन्म-प्रौढायें होती हैं। जगतकी कितनी ही ऐसी कौमारकी क्यारियोंमें लतायें या पौधे होत ही नहीं है परन्तु वृक्षही उगे हुए होते हे।

ये लज्जामन्थरगतिशालिनिया अदृश्य हुई और मै पृथ्वीपरसे आका-शकी ओर देखने लगा। वहाभी कितनी ही छोटी-छोटी तारिकायें लज्जाकी बारीक-बारीक साडिया ओढकर झीनी-झीनी दृष्टिसे जगतको देख रही थीं तेजस्वी ग्रह झलमला रहे थे और एक चद्र आकाशभरको प्रकाशित कर रहा था।

मुझे जान पडा कि रसके ब्रह्माण्डमें भी प्रत्येक आकाशके लिये एकही चन्द्र है—एकही अमृत ज्योति है।

मैं अपने कमरेकी गुहामें गया, एक काव्य उठाया-खोला। परन्तु तुरन्त हृदयमें प्रश्न उठा कि चन्द्रमा सुन्दर है या कविता? मुझे ऐसा भास होने लगा कि मै उस सुधाकरकी अवगणना कररहाहू जिसके—आदि

कालके कवित्व निर्झरसे बहतेहुए-अमृतसे कविकुलका पोषण होता हुआ चला आया है। यदि कोई आपसे ऐसा कहे कि चन्द्रकी अपेक्षा चन्द्रकी कवितामें विशेष सौन्दर्य है तो इसे माननेके पहले किसी कविकोही यह बात पूछ देखना। प्रतिदिन पिये जाने परभी जिसका रस व्यतीत नहीं होता और प्राचीन कालसे परिचित होने परभी जो नितनई उमगके साथ पीनेके अभिलाषियोंको अजली भर-भरके पिलाता है वह चन्द्रमातो ब्रह्माण्डके आश्चर्योंमें-का एक महा आश्चर्य है। अधेरेको भी उजेला करता हुआ यह रजनीपति जगतकी अद्भुत पारस ज्योति है। चन्द्रकी एक-एक किरण सुन्दर काव्यसे भी महासुन्दर काव्य है। चन्द्रकी जितनी किरणें हैं उतने, चन्द्रविषयक काव्य—क्या अच्छे और क्या बुरे दोनों मिलकर—अभीतक जगतमें नहीं लिखे गये। चन्द्रके अमृतकी अपेक्षा चन्द्रकी कविताके अमृत उस दिन तो मुझे विशेष मधुर न जान पडे।

परन्तु हृदयका चन्द्र उगे बाद सब चन्द्र फीके पडजाते है यह सीखना मेरे लिये बाकी था।

पुस्तक के अक्षरोंको पढनेके लिये दीपक लगा रक्खाथा परन्तु उस दीपककी शिखाभी बाहरके प्रकाशको देखकर शरमाती हुई जान पडती थी। मुझे सकोच न था, मै पढ रहा था। मै जिसे और समय में पढ सकता था उसे ही उस समय पढ रहा था, और जिसे और समय में नहीं पढ सकता था उसे पढ नहीं रहा था। अनजान में ऐसी ही भूलें हो जाया करती है।

चारेक बजे होंगे। चन्द्र नम रहा था और मेरे पर विशेष-विशेष चांदनी छिटकाता जा रहा था। मुझे मालूम न था कि चन्द्रको आज मेरे पर ही अभिषेक करना है। नहीं तो इस चान्द्रिका के अभिषेक का मैं और ही तरहसे आदर पूर्वक सत्कार करता।

परन्तु मनुष्यकी कितनी एक भूलोंको परमेश्वर ही भग करता है। इस ब्रह्म मुहूर्त मे मोर और कोकिल बोल उठे —

वनमें बोले मधुरव मोर,
कोकिल रानी किलोल करे रे लाल'

वर्षाऋतुके इस प्रारम्भ कालमें वन और नगरमें मयुर बोल रहे थे। परन्तु इस मयूर की केकावली और कोकिलकी किलोलता दूरदूर चाद्-नीमें तिर आती हुई बालिकाओंके सुरसमयूरकी मधुरी आवाज थी। नगरकी सुषुप्त वनघटनामें इस माधुर्यका टहुका उड रहा था। पढ रहा था, उस कविताकी केकामें ये केका या किलोल न दिखलाई दिये। मै उठा, पुस्तक गिर गया और कृत्रिम दिया भी बुझ गया, मै चादनी पर गया और उस मयूरकी ओर आशाभरी दृष्टिसे निहारता हुआ खडा रहा मानो आकाशमें कोई आश्चर्यका उदय होनेवाला ही न हो!

मयूर का शब्द अन्तर्हित होगया और शान्ति–जगतके जन्म पहले की शान्तिके ऐसी महागर्भवती शान्ति–फिर फैल गई। दिशाओंकी गुहामें शब्द शून्यता खडी थी।

चन्द्रमाकी किरनें टेडी गिर रही थीं, वे ऐसी लगरही थीं मानो नयनों के कटाक्ष ही न लग रहे हों और उत्कण्ठा बढा रही थीं।

नवीन नाटक का परदा जब उठनेको होता है तब दर्शक वृन्द मे जैसी आतुरता होती है, सागर के क्षितिज पर घूमकर आनेवाली नौका को जिस उत्कठा से तट पर बैठकर प्रतीक्षा करने वाले देखते है, समाधि में से जगकर न जाने क्या अपूर्व ज्ञानज्योति प्रकट करेंगे इस आश्चर्य भरी जिज्ञासा से भावुक शिष्यसघ नित्य समाधि में से जगते हुए योगि-राजको जिस प्रकार निहारते रहते है, मेरेभी भाव वैसे ही होरहे थे। प्रियवरो! सूर्यका उदय देखनेके लिये कभी गिरिके शिखर पर चढे हो? उस समय कौतुक के हिचोलेसे आपका हृदय दोलायमान हो रहा था। उसी प्रकार मेरा हृदय झूले पर चढा था।

मेरे श्रवण सावधान थे, नयन मेरे चकोर थे। दिशाओंसे श्वासोच्छ्वास

सुनने को भी मैं तैयार था। परन्तु दिशाओंके समाधिस्थ होजाने से उनकी श्वसनक्रिया भी बन्द थीं।

सृष्टाने सारी सृष्टि बनाकर यदि सुन्दरी न बनाई होती तो? सारे आकाश को बनाकर सूरज न बनाया होता तो? परन्तु इसतरह के सारे प्रश्न आज तो व्यर्थ है !

इतने में ही अनचीते एकाएक, मानों मेरे वामाग में से ही प्रवाह फूट निकला हो इसतरह, गान सुनाई दिया कोयल मेरे झरोखेसेही कूक उठी ! उत्साह का जोश और आदरके आमन्त्रण उस गानेमें अनुपमताके साथ भरेहुए थे। माधुर्य तो काव्योंमेंसे चुन चुनकर उस मुखमें रख दियाथा। मानो एक निर्झर ही न गर्जन कररहा हो ! इस प्रकार उसके कठसे ध्वनि निकल रहा था। मानो जगत की विजयदुन्दुभी ही न बज रही हो !

जोश भरे हुए कौमारके महाजल प्रपातके सगमोंको पाकर जलपूर्ण सरितायें बहती है और ससारके महासागरोंको भरती है। कोमल कौमारकी सरें इतनी जगतयात्रा नहीं साध सकतीं और कुमारिका, नदीके ऐसी स्थलमें ही थक कर रह जाती है।

जैसे दिशाए सकुचित होकर भीतर से सूर्य मडल प्रकटे और बादल फटकर भीतर से चमाचम करती हुई बिजलिया चमकें, वैसे ही परछाइयोंको चीरती हुई बालायें चद्रिकामें आई। पूर्णिमाकी ज्योत्स्नाभरी रातमें जैसे कुमुदनीकी कलिकायें विकसित रहती है। वैसेही इन बालाओंके मुखके कुमुद चद्रिकामें विकस रहे थे। किरणके किरणसे धका खानेसे एक अदृश्य अनहद नादका रणकार उत्पन्न होता है वैसाही अदृश्यनाद मेरे अन्तरमें जागरित हुआ। हृदयकी घटीके मधुर रववाले टंकारकी ऐसी उनकी करतालिकाओं की सम्वादी और मीठी तालिया बज रही थीं। नयनके बाण दिशाओं को बींघ जीतते हुए उड़ रहे थे। बदनके हाससे गगन की कौमुदीके हासभी लज्जित होतेथे।

आंखें मलीं परन्तु अध खुली ही रहीं। मेरी पलकोंपर जान पडने लगा कि कुछ अद्भुत भार सा आ पड़ा है!

'स्वागत करू प्रिय आज घर आवोना!

कौमारके सौभाग्योत्सवमें बालिकायें इस आमन्त्रणके गीतको गा रही थीं

'स्वागत करू प्रिय आज घर आवोना,
आगन भरू शुभ फूल घर आवोना'

पूर्णिमाकी चादनीके चौकमें बालायें किसीको बुला रही थीं। नगरकी गलिया सुनसान थीं परन्तु इस सुनसानमें भी चेतन चमत्कार दिखला रहाथा। जीवनके सर्वस्वको निमन्त्रण देती हुई वे बालिकायें उल्लसित हो रही थीं। उनकी नयनतारिकाओंमें-से प्रकट होता हुआ रसचेतनका प्रकाश पूर्णिमाकोभी प्रकाशित कर रहा था।

रसके आगनमें वे किस प्रियको निमंत्रित कर रही थीं इसका उन्हें स्वय कुछ भान नहीं था। वे आकाशमें अलक्ष्य रूप से शब्दबाण छोड रही थीं।

सारे जगत का सुन्दरी सघ और पुरुष परिवार आमन्त्रण के इस गीत को गा रहा है। वाचकगण! आपने भी इस आमन्त्रण को सुना है न?

देवाङ्गनाओंके विमान मानो अवनी मे खेलनेको न उतर आये हों इस प्रकार से उडती हुई साडियोंको ओढे हुए वे कुमारिकायें चली आरहीं थीं।

गगाके मूलको खोजने वालेके समान मेरे नयन उस गीत-गगा के मूलको खोज रहे थे।

सब तारिकाओंमें जैसे चन्द्रकला तुरत लक्ष्यमें आजाती है वैसेही वह सारे सखी मण्डलमें अग्रेसर जान पडती है। पुष्प वाटिकाओं में जैसे फवारा उछले वैसेही वह सखियोंके परिवारमें उछल रही थी। अध्वर्युके मत्रोच्चार को जैसे बरनीके ब्राह्मण झेलें वैसेही उसके गीतमत्रको

सखिया झेल रहीं थीं। सखिसमुदाय में प्रभुकी प्रभाकला के ऐसी वह एक और अद्वितीय थी।

रग विरगी बदलियोंसे घिराती हुई सूर्यप्रभा वर्षा की किसी साझमें प्रकाशित हो रहती है वसेही सखियोंकी बदलियोंसे उसका ज्योतिदेह घिराया हुआथा और इस घेरेमेंसे उसकी कातिकी कलिका कुछ और ही प्रकारसे खिल उठी थी।

मेरे हृदयमें अचानक भूकम्प हो उठा। मेरे मनके महल गिरे तो नहीं परन्तु उनके युगयुग से बन्द हुए द्वार खुलगये, आगलें टूट गई और भीतर झंझावात बहने लगा।

बिजलीको छूनेसे जैसे धक्का लगता है वैसेही उसके नयनोंके किरणोंके स्पर्श होते ही मेरे एक अद्भुत धक्का लगा।

आकाशमें तेज रेखा खींचती हुई हवाइया चलें वैसेही मेरे हृदयाकाशमें हवाइया चलीं और तेज रेखा खिची।

वे सिहराशिकी तारिकायें थीं, प्रत्येक कुमारिका सिहीके ऐसे उत्साह भरे उमगी वेगसे पूर्ण थी। जैसे दीपकोंको दीपित करता हुआ छोटी छोटी नावोंका सघ सरिताके जलौघमें तिरता हुआ आवे वैसेही गलियों की सरिताके ज्योत्स्नाजल में तिरती आती हुई उन कुमारिकाओंकी नौकामें नयन-दीपक प्रदीप्त होरहे थे।

वृक्ष और लताओंकी हरियाली में होकर जलपूर्ण स्वच्छ निरझर जैसे बाहर निकल आवे, उसी तरह सखियोंकी तरुलताओंकी हरियालीमें से वह उछल कर आगे आई हुई थी।

कौतुकके झूलेपर झूलता हुआ म दर्शनमुग्ध होकर खडा रहा और जिन्दगीके भेदकी ऊडा गुफाओंको देखता ही रहा।

पृथ्वी फटजाय, भीतरसे प्राचीन मन्दिर प्रकट हो, और इस मन्दिर की देवियोंके बीचमें साक्षात् लक्ष्मीजी स्वय विराजमान हो रही हों,

इस तरह सखियोंकी देवियोंके बीचमें मुझे इन सौभाग्यलक्ष्मीजीके अनचींतेही अद्भुत दर्शन हुए ।

आकाशमें चन्द्रराज प्रफुल्ल वदनसे प्रकाशित हो रहा था । परन्तु पृथ्वी पर की उसके मुखकी कातिमयी कौमारकला मुझे विशेष मधुर और अमृतमयी जान पड़ी ।

कौमारके जोशकी उस रातको चारों ओर धारायें उड रहीं थी । उस धारावर्षामें मैनेभी स्नान किया और कौमारके फुवारे मेरेभी अगसे प्रकट होने लगे—चलने लगे ।

मेरी चादनीके नीचे सखी मण्डल आया, मानो जगतके सौन्दर्यकी सरितायें मेरे आगनमेंही न आगई हों ।

परन्तु उनमें मेरे ऐसे निश्चेतन को चेतन देनेवाली पुण्यप्रवाह भागीरथी तो एकही थी ।

बिना नोते हुए महमान हृदयमें आकर विराजमान हो जाते है क्या नोते हुए महमान वैसे प्रिय मालूम होते है ?

सखिया मेरे द्वारपर आई, मानो मकल पारावार सहित पूर्णिमा मेरे आगनमेंही न आई हो ।

हमारे नेत्रोंका त्राटक घडीकके लिये जम गया । मैं दिङ्मूढ हो खडा रहा । मानो मेरा चेतन चला गया हो, मानो इन्द्रिया सटक गई हों ! मुझे दर्शन समाधि लग गई ।

आरसीमें जिस तरह नाचती हुई मूर्तिके दर्शन होते हैं वैसेही मेरे अन्तरकी आरसीमें उसकी मूर्तिकी छायाके नृत्य नच रहे थे ।

उत्सवके दर्शन कितनी घडीके होते है ? मेरा भी ऐसाही हुआ । सौन्दर्यके दर्शनसे किसको तृप्ति हुई है ? मै अतृप्तही रहा ।

गई, वे गई, शोभा और रसकी वायु—नौकायें वे सब गई । मानवरूपधारिणी वे कोयले सौन्दर्यकी पासोंको फडफडाती हुई उड गई ।

-चन्द्रिकाके एक सरोवरको उल्लघन कर अधेरेको बटाती हुई वे ज्योत्स्नाकी पुतलिया ज्योत्स्नामें मिलगई।

चादनीपर मै अकेला रहा। पूर्णिमाकी चन्द्रिका मुझे अभिपिक्त कर रहीं थीं। आश्चर्य-आश्चर्यके झनकार वातावरणमेंसे झमझम करते हुए -मुझे सुनाई पडते थे।

अन्तरिक्षमें उस तेजके पीछे उड रहे थे जो उनकी सौन्दर्य पाखों-मेंसे खिरे थे।

दर्शन मूर्छामेंसे मै जगा उस समय पूर्वमें उषाकी प्रथम छायाकी रेखा खिचने लगी थी। उसके अच्छे अच्छे रगकी छबिया चन्द्रिकामें प्रकट हो रही थीं।

धीरे धीरे मेरी दर्शन मूर्च्छा उतरी, धीरे धीरे मेरी वृत्तिया समतोल पर आई। अन्तर के सरोवरके तूफान धीरेधीरे थमे और जलका झूला मन्द-मन्द लहरपर झूलने लगा।

मेरे कमरेमें भी अधेरा नहीं था और हृदयके ऐसे सानन्दाश्चर्य प्रकाश -वहा पर प्रकट हो रहे थे।

उस पूर्णिमा की ज्योत्स्नामयी रातकी उषाके समान ही मेरे जीव-नके आकाशमें उषाका उदय हुआ और प्राणोंमें प्रभात प्रकटा।

प्रकरण २ रा.

खिलीहुई पखडियोके कमल



प रन्तु वह कौनथी ?

यौवन का फव्वाराथी, चन्द्रिका का चन्दनप्रपात थी, नगरकी वह एक बालिका थी।

किससे पूछू कि वह कौन थी ? उसका क्या वर्णन करके पूछूँ कि वह कौन थी ? चाँदनीमेंसे आई और चाँदनीमें होकर गई चाँदनीकी पुतलीके ऐसी वह बाला कौन थी ? पृथ्वीको फोड कर आकाशगगा उछले वैसे ही उछलती थी।

कोकिलसे भी मधुर और मदभरी उसकी आवाजथी। हरिणीसे भी चपल उसकी आँखें थीं। तारिकाओंको पकडनेके लिये मानो कूद रही हो इस तरह वह कूदती थी।

मेरा दिमाग सुन्न होगया। अनुत्तर प्रश्नके टकोरे गाजते रहें तब ऐसा ही होता है। माथा दुखता हो और उसमें सटाके लगें, वैसे लगते हुए एक ही प्रकारके सटाकेकी तरह यह प्रश्नका सटाका लग रहाथा कि वह कौन थी ? इस प्रश्नका उत्तर न मिला और न उत्तरकी रीति ही मिली। गणितके किसी प्रश्नको हल करते करते कभी भूल गये हो ? कभी ऐसा जान पडा है कि खोपरी मे की आकिलका तेल बीत गया है और मस्तिष्कका दीपक बुझगया है ? यदि हाँ तो मेरी स्थितिको समझ सकोगे। ऐसा होगया था कि अन्धकारके बनमें भूले पडगया हूँ और मार्गका किरण भी दिखाई नहीं देता। अमूझन होती है क्या बला, सो मुझे उसी समय जान पडा।

आसमानमें उडउड़कर पंखी जैसे तड़पता हुआ नीचे उतरता है वैसे ही मेरी ऊर्मियाँ उड़तीथीं और थक कर नीचे उतर आती थीं।

मेरा शरीर ज्यादा गरम रहता था, परन्तु इसका भेद तो समझ पडता था। वह अपने नयनकी विजलीको मुझ में भर गई थी और मेरे शरीरमें इस बिजली की गरमी थी।

किसी घटामें भूतका प्रतिबिम्ब देख पड़नेपर मनमें कौतुक जागरित होते है और अदृश्यके आकर्पण प्रवल होते हैं वैसे ही मेरे कौतुक जगे और अदृश्य मेरा आकर्षण करने लगा। इस अदृश्यके ही मुझे आमन्त्रण हो रहे थे।

कविताकी कोई कल्पना उडती उडती आवे और पकडनेको जाते पकड़में न आय, इस तरह उसकी मुझे कल्पनायें आतीं और अस्त हो जाती थीं।

प्रभातमें छोडदिये हुए काव्यको लेकर मे दो पहरको पढने लगा। एक पद पढा, पाँच पद पढे, दस पदे, परन्तु ग्यारवें पदपर सायकालकी छाया सारे पृष्ठपर छागई। भरी दोपहरीमें मेरे अधेरा छागया और एक अक्षरभी नहीं पहचानमें आया। मैने सोचा कि रातके जागरणसे आँखें तिलमला गई होंगी। शीतल जलसे आँखें छींट कर आया और फिर काव्य पढना प्रारम्भ किया।

परम सौन्दर्यका वह काव्य था। एक देवकुमार और देवकुमारी की वह कथा थी।स्वयम्बरके भव्य वर्णनका अध्याय मैने खोल रक्खा था।

वाचक! सबके स्वयम्बरमें यह रस और यह कविता क्या नहीं होते?

पाँच पद पढे, दस पद पढे, ग्यारवें पद पर एक छाया मेरे पुस्तक-पर फैल गई।

अक्षर आपसमें घिलमिलहोगये,और रोशनाईके कणकी जगह स्याही की रेखें होगईं। काव्यके पृष्ठभरमें एक प्रतिबिम्ब तैरतासा जान पड़ा।

मैंने देखा कि मेरे और विश्वके बीचमें एक छाया खडी है।

यह किसका प्रतिबिम्ब है ? इसके कोई घाट न था, कोई रूप न था और न कोई रग हीथा। घाटियोंमें, गुफाओंमें, और पर्वत शिखर पर कुछ मन्द मन्द धूमसा उडा करता है, उस तरहका कुछ था। न तेज न अन्धेरा, सायकालमें अन्धेरी फैलती है उसके टुकडेके ऐसा कुछ था।

शब्दमूर्ति जिसकी नहीं बँधी ऐसी भावनाके समान यह छाया तिरमिराती थी। ज्ञेय अज्ञेय का प्रतिबिम्ब आकाशम स्फुरण होता है, दार्शनिकके हृदयमें झमकता है, सूक्ष्म दर्शियोंकी दृष्टिमें मुस्कराता है, वैसा ही यह प्रतिबिम्ब मेरी पुतलियोंके साम्हने मुस्कराता था।

अग्नि जीवकी चिनगारी प्रकटती और शान्त होजाती है, सूक्ष्म सूक्ष्म तारिकाओं की झलमलाहटका तेजबिन्दु दिखता-दिखता नहीं दिखाई देता। इसी प्रकारकी वह छाया प्रगटती और शान्त होती थी, दिखती-दिखती न दिखाई देती थी। वह थी ओर न थी। गहनताके वेगपूर्ण सब आकर्षणोंसे वह मेरा आकर्षण करती थी।

आज थक गया हूँ ऐसा मानकर इस देव कुमारीके स्वयवर सौभाग्य की विचार कल्पना करते-करते मेने पुस्तकको बन्द कर दिया।

फिरती-फिरती दृष्टि मेरे प्रियतम चित्रपर पडी। मेरी बहनने उस चित्रको बनाया था और मुझे वह बहुत ही प्रिय था। एक अद्भुत प्रभात के प्रभामहलकी अटारी परसे एक देवाङ्गना एक फूलका हार लेकर किसी धन्यभाग पृथ्वीवासी को पहनाने को उत्तर रही हो, इस दृश्य का यह चित्रथा।

बहन कहती कि यह चित्र मेरी सौभाग्यरानी का है। पहरों-के-पहर इस चित्रका निरखना मुझे अच्छा लगता था। मुझे मालूम न था कि मेरे जीवनके प्रभात का यह चित्र था। आँखें इस चित्र के साम्हने होती थीं तब कल्पनाके किरण ब्रह्माण्ड भरमें घूमते थे और कुछ कुछ सृष्टियाँ रचते

थे। आज मुझे देव प्रासाद दिखाई दिये, फूल माला देख पडी, परन्तु देवाङ्गनाके मुखके दर्शन नहीं हुए। उसके मुख पर कुछ मदता थी, कुछ छाया थी। यह प्रतिबिम्ब किसका था ?

बारीकी बेलकी कोंपल की छाया होगी सोचकर बेल की नई कोंपलें मैने इकठी करदीं। तो भी परछाही तो उस देवाङ्गनाके मुखपर ज्यों-की-त्यों ही थी। पहले के प्रकाश की अपेक्षा भी यह छाया मुझे विशेष अच्छी जान पडती थी और मेरा विशेष आमन्त्रण करती थी।

कोई कहेगा कि यह क्या था ?

आँखमें नींद की घुमेरी उभरा रही होगी और आती नींद की ये परछाइयाँ होंगी ऐसा सोचकर मैं पलङ्गपर सोनेको जापडा। परन्तु यह चमत्कार कैसा ? मेरे कमरे में तो यह चित्र एक ही था, और आज दिवालों पर ये अनेक चित्र कहाँ से ? किसके है ये चित्र ? सफेद और काले रेखाओं वाले मानो वह बद्दलों के ढेर ही न हों ! बद्दलों के भेद समझ में आँय तो इनके भी भेद जान पडें। पीपलके पत्तों पर चन्द्र की किरणें गिरें और पत्ती पत्ती पर दीपक लगावें, ऐसे ही मेरे कमरे के अश्वत्थ में दीपक की ज्योतिर्माला झबक रही थी। ये तो और कुछ नहीं वे परछाइयाँ ही थीं।

परन्तु ऐसा कौतुकभी कभी देखा हे कि वस्तु बिना ही प्रतिबिम्ब हो ?

इस तरह मै उलझनमें पडा हुआ करवटें बदल रहा था कि मेरी बहन आई। सारी रातका उसे जागरण हुआ था। इससे कल्याण किरणके-से हाथ आँखोको मल रहेथे और परम उल्लासकी वाग्धारा मुखमें से बरस रही थी।

भाई, क्या कहू ? पूर्णिमा में उषा कैसा नाची ! हम वसुओं की यह वसुन्धरा थी। इसे स्थाई चान्द्रिकाकी अञ्जलिया भरभरकर हमने न्हिलाई तब तेजतेजके समूहके ऐसा इसका रूप क्या खिला है ! नयनकी पुतलियाँ तो ऐमी थीं कि मानो पद्म का पखडिया ही न प्रफुल्लित हों !

वह अब अच्छी तरह जागरित होगई थी और आँखें मलना उसने बन्द करदिया था। बडे भारी आश्चर्य के साथ वह गाज उठी

" परंतु यह क्या ? उषाकी पुतलियों की भाति तेरी भी पुतलियोंसे तेजके फव्वारे उछल रहे हैं ! फूली हुई पत्तिया वाले मानो पद्म ही न हों ! तुझे भी पूर्णिमाको किसीने चन्द्रिकासे न्हिलाया है क्या ? आँखमें भी अञ्जन आजासा जान पडता है। "

वह हँसती-हँसती चली गई पीछे से उसके हर्ष के जल की तरगें मेरे कमरे में उछलती रहीं।

परन्तु यह उषा कौन थी ? सुन्दरियों के सौन्दर्य नगर की सौन्दर्य देवी यह उषा है कौन ? जगतके दर्शनों मे के महा विकट प्रश्न की माँति उस समय तो मेरा यह प्रश्न अनुत्तर हा रहा।

वृक्ष शाखाओंमें बिजलीके चमकारे होते है वैसे ही मेरे देहकी शाखाओं में अद्भुत किरणों की चमचमाहट होती थी। शूलके शरका-सा एक विद्युद्बाण सूँसाटे करता हुआ मेरे हृदय के पार होगया। मस्तिष्कमें जाकर यह बिजली का किरण फूला और पुष्प प्रकट हुए।

मेरी निगाह दिवालोंपर पडी तो खिली हुई पंखडियों वाले पद्मोंकी माला सारे कमरेको सजाती हुई दीख पडी। तारीभ देखातो बेल की एका एक शाखपर खिले हुए पद्म देखपडे। पुस्तकोंकी ओर देखा तो वहाँ भी वैही खिले हुए कमलों की झिलमिलियाँ देख पडीं।

पदार्थ विज्ञानी कहते है कि जडमें भी चेतन किरणोंके विद्युत्कण (Electrones) उडते है और महा समर्थ सूक्ष्मदर्शक यन्त्र से देख पडते हे। इन विद्युत्कणोंके पुष्प बनगये हों और जगह जगह प्रकट होगये हों इस तरह के खिले हुई पँखडियों वाले पद्म जगह जगह मुझे देख पडते थे।

ये प्रतिबिम्ब थे किसके ? कामन ट्रूमन और जादू मे मानता

नहीं परन्तु आज तो जादूने मेरे कमरे मे प्रवेश कर अपना राज्य स्थापित करलिया।

नजूमी, रमलवेत्ता, प्राणविनिमय तत्त्वज्ञ, ज्योतिषी,मन्त्राजी, योगक्रियाके पढित, अगम्यके यात्री, आन्तरिक रोगोंके वैद्य, ऐसे ऐसे ढोंगी नामोंको धारण करनेवाला एक आधुनिक ओझा मेरा मित्र था। इन अर्ध सत्योंकी अशास्त्रीय कल्पनाभूमि में न्याय और विवेक की शृखलाओं से रहित हो भमने का मुझे भी शोक था। सायकालको इसमित्रसे जादू-की बात कही और पूछा कि वस्तु बिनाके ये प्रतिबिम्ब कैसे है ? और खिले हुए पद्म कहाँ के हैं ?

उसने मेरी आखों की ओर देखा, अपनी इडा पिंगला सुषुम्णा परखी, आकाशपर एकनिगाह डाली और कहा, " देख " तेरी आखमें अन्धकारका नहीं, प्रकाशका पुष्प खिला है। एक पुतली थी दूसरी प्रकट हुई है। जिन्दगी के गुरुत्त्वाकर्षण के घृत दीपक है। त्राटक साधते समय जो श्याम बिन्दु होती है वह त्राटक सिद्धिके समय पहले तेज बिन्दु और फिर तेज बिम्ब सम जगमगाने लगती हैं । ऐसेही तेरे भी यह किसी त्राटकके ही कमल है। दिव्य ददामि ते चक्षु' कह कर श्रीकृष्णचन्द्रने जो दृष्टि गण्डीवधन्वाको दीथी वही अदृश्यदर्शिनी दृष्टि हम सूक्ष्म विलासियोंके तो प्रकटी हुई होती है और आज तेरेभी प्रकट हुई। दोस्त ! अब तूभी चतुर न रहकर दिवानों की दुनियॉमें आया। तेरे नयनोंमें जो मूर्ति है उसी के ये प्रतिबिम्ब हैं।

मुझे दिवाना होनाभी न था और न उसके लम्बे चौडे भाषणको ही सुनना था। नमस्कार करके मै अपने रास्ते लगा। मेरे मस्तिष्कमे उसके शब्दका नाद होता रहा कि तेरे नयनोंमें जिसकी मूर्ति है उसीके यह प्रतिबिम्ब है।

परतु वह प्रतिबिम्ब तो मार्गपरभी गिरे हुए थे। चतुर होना या

दिवाना होना ये मनुष्यके अपने हाथ में है या सयोग बलके अधीन है? उस दिन मुझे नगरके जनमार्ग खिली हुई पखडियों वाले कमलोंकी मालासे सजाये हुए जान पडे।

परन्तु वह मूर्ति मेरे नयनोंमें थी या हृदयमें?

रातको दीप-दीप की ज्योतिमें खिली हुई पखडियों वाला पद्म खिलता हुआ जान पडा। मै नहीं तो मेरी आँखें तो दीवानी होगई थीं। किसीसे कहभी नहीं सकता और कहूँ भी तो कहेंगे कि भाई ने भाँग मली है कि लाल-पीले दिखाई देते है। बहनसे पूछा कि दीपक की शिखा-शिखामें से खिली हुई पखडियोंके पद्म प्रकट हो रहे है यह क्या है? तूफानी हास्यसे भरी हुई पलकों को नचाते-नचाते उसने कहा, ये तो उषाकी आँखें है उषाकी!

उसके मुखका वाग्बाण मेरे मर्मस्थानमें प्रवेश कर गया और साला। उसके तूफान मुझसे न सहे गये और मै वहाँ से चल दिया।

परन्तु यह उषा है कौन?

उस पूर्णिमाकी पुतली की मेरे मनमें तालाबेली लगीथी और तनमें तनमनाहट होने लगी थी। चाँदनीमें की उस आनन्दमूर्ति की मोहनी मेरे स्मरणको विलोये डालती थी।

सिन्धुनदके मल खोजनेवाले मुसाफिर को जो आकर्षण खींचते हैं उससे भी अजब मेरे अज्ञेयके आकर्षण थे, क्योंकि मुझेतो जीवनके इस सिन्धुके मूल खोजने थे।

अन्धेरी रातमें चकोर जैसे चन्द्रकी लो लगाये रहता है वैसे ही मै अपनी ज्योत्स्नाकी लो लगाये हुए था।

मेघवाली रातमें चढे हुए बद्दलोंमें बिजलीकी चमचमाट और लपलपाहट होवे और एक दूसरीको बेधती हुई विश्वके परदों पर सोने चाँदीके देवी भरतके ऐसी अद्भुत चित्र कामको प्रकटावे और मिटावे-वैसे ही उसकी

स्मरणबिजलीके तार मेरे दिलके परदोंपर भरत काम कर चमक रहे थे। परतु इस समय वह चमक की तेजलतायें आसपासके अन्धकारके महासागरको ही केवल सुदर्शनीय बनाती थीं।

गन्धर्व नगर कभी देखे हैं। सन्ध्या की सन्धिके समय सोने चाँदीके बद्लके महालय क्षितिज पर बनी हुई मणिमय अटारी या चाँदनीपर देवी जरीनके इन्द्रध्वज फरकते हुए तो कभी देखे होंगे! ऐसे देवमहलोंकी देव बगीचियोंमें मै अपनी पूर्णिमाकी पुतलीको खोज न रहा होऊं, ऐसा मुझे जान पडा।

जगत के थाक से थककर रातको विश्रामके लिये सोया। इतने में ही वातावरण पर तैरता-तैरता सगीत का शब्द आया। दूर दूर चाँदनी के महलमें कोई गा रहाथा—

> जगतके चश्मे उलटे हैं चतुर दीवाने लगते हैं।
> पिया पीयूष जिनने वे चतुर दीवाने लगते हैं,
> जगतके चश्मे उलटे हैं, चतुर दीवाने लगते हैं।

आगेके चरणोंको मैने नहीं सुना, क्योंकि चितनके लिये इतना चरण ही बस था। इस चिन्तनके देशमें ही निद्राने मुझे आ घेरा। निद्रा में भी उस रातको मैने कुछ कुछ स्वप्नके बाग बगीचे देखे। इन सब बाग बगीचोंके वृक्ष वृक्षपर और प्रत्येक वृक्ष की शाखाशाखा पर खिली हुई पखडियोंवाले पत्र ही झूल रहे थे।

स्वप्नोंने निद्राको ठीक न आने दिया तो भी आँख खुली तब आकाश के चौकमे अभिनव रग खिल रहेथे! मेरी मानसघटाके प्रश्न टकार का उत्तर ही न उदय हो रहा हो! विधात्रीने विश्वके सौभाग्य का महा ग्रथ ही न खोला हो! इस तरह का कुकुम औरकेसर के अक्षरों से प्राचीका महा पृष्ठ लिखा गया था। उसके विराट केवडे के सिरे पृथ्वी वासियोंके मकुट बिन्दु तक सौरभ फैला रहे थे। कुछ ऐसा भास हो रहा था कि

गुलाबी साडीमें अधढँका और अध खुला सुवर्ण अङ्ग हीं न हो ! रजत श्वेत छाती म बारीक वारीक जामुनिया रग की रेखायें होरहीं थीं। वर्षा और प्रभाके देवपरिधान पहन कर आकाशके चौकमें आज उषा खडी हुई थी।

मै उस दैवी चित्रको आनिमिष नेत्रसे निहारता हुआ खडा रहा। उषा की एक एक रेखामें खिली हुई पँखडियोंके पद्म शोभायमान होते हुए देख पडे मानो विश्वसुन्दरीकी खुली हुई वेणी की एक एक लडमें पुष्प न पिरोये हो !

आसपास प्रभातकी निर्मलता उड रही थी और प्रभातके ब्रह्म महलके चौकमें मुझे ये पुण्य दर्शन हुए।

बदलीकी भाँति जगतमें बरस कर आसमानको बधाती हुई और ब्रह्माडका अभिषेक करती–करती वह उषा अन्तरिक्षमें अन्तर्धान होगई, महाविराटमें समा गई, मेरी पूर्णिमाकी पुतली की तरह, दर्शन देकर अदृश्य होगई।

फिर भी वही प्रश्न का टकोरा बजा कि वह कौन थी ? जीवनके इस विकट हिसाबकी कुजीको मै खोज रहा था।

प्रात कालकी केसरिया धूपकी उलटी सीधी रेखायें नगरके महोल्ले और गलियों म पड रहीं थीं और लोकसघ उस धूप छायाके रगोंको ओढ़ते पलटते जगतमें बहे जाते थे । ब्रह्माण्ड मन्दिरके शिखरकलशके ऐसे सूर्य भगवान जगतकी हवेलियोंके कलश रूप होकर विराज रहे थे।

इतनेमें पानी भरकर पनिहारी आई । प्रात कालके ऐसी उज्ज्वलता, प्रकाशके ऐसी निर्मलता, उसके चारों ओर फुर रही थी। लज्जाकी साडी-के ऐसी चोराहे की फुलवाडी में फुलझडीके ऐसा उसका अङ्ग सबका– सब ढँका हुआ था केवल मुख कमलके खुले हुए श्वेत गुलाबी दिव्य हासका रगही देख पडता था। मस्तकपर जलके कुम्भका बेवडा छलक

रहा था। बेवडेके जलमें और पीतलके कुम्भों में सूर्यतेजकी लहरें उछल रही थीं। जगतके पाप धोने को पवित्र पुण्यके जल ही न ला रही हो इस तरह वह सुन्दरी जगतके चौकमें अकेली जा रही थी, मानो गगनमें बहती हुई जलभरे बद्दलकी सुवर्ण नौका ही न आरही हो! पृथ्वीको भी भारी पड़ना न चाहते हों इस तरह उसके सुकुमार पैर पड रहे थे।

सन्ध्याके अद्भुत रगवाले निर्मल ईश्वरीय पुष्पोद्यान को आकाशकी क्यारियों में निरख कर जैसा नि स्वार्थ सहज आल्हाद प्रकट होता है, वैसाही निष्काम आल्हाद मुझे प्रकटा। आल्हाद में से आशा प्रकट हुई और आशावाले अन्तरमें साधन प्रकट हुए।

पूर्णिमाकी पुतली कौन थी इस हिसाबके निकालनेकी कुजी मुझे मिल गई, अज्ञयके मन्दिरका मार्ग मुझे देख पड़ा।

मै भी जगतकी अटपटी धूप छायाकी पोशाकको पहनता–खोलता और फिर पीछी पहनता–पहनता नगरकी पगडडियोंपर होता हुआ चला।

वह कुलयोगिनी पनिहारी जैसी एकदृष्टि थी वैसा ही मै भी एक-दृष्टि था। आशा की मूर्तिके अदृश्य आकर्षणके भारी पवन, खोजके साहसके महावायु मेरे जहाजके वर्दवान में भरे थे। नगर की हवेलियों को पार करता हुआ मैं नगर के बाहर गया। पानीके किनारे जैसे पछी पहुँच जाते है वैसे पनघट की पालपर जाकर मै भी खडा हो गया।

पानीके किनारे जैसी जनकथा सुनाई देती है वैसी हाट बाट और हथाई आदि पर भी सुनाई नहीं देती। हमारे यहाँ बडकी एक पञ्चवटी थी और उसके एक ओर विशाल वापी थी।

पचवटी की छाया मे बैठकर नगरके बन्शीधर बासुरी बजाते थे और जमनाके ऐसी बावडी में से नगर की गोपियाँ पानी भरती थीं।

पपैया जैसे बदलीके बरसनेकी बाट देखता हुआ पुकारता है वैसे ही मेरी रसबदली की बाट देखता हुआ मेरे उरका पपैया भी पुकारता था।

अनुकरण या उपमायें क्या असल होते है ? असलके निर्देश करने के ये तो अधूरे साधन है । चाहे जितनी ही उपमायें क्यों न दूँ परतु जिसने उपाको देखा ही नहीं उसे मै क्योंकर उपाको दिखा सकता हूँ ?

आज मै तीन अवधान कर रहा था । एक तो पञ्चवटीके पत्ते गिनने का, दूसरा पनिहारियोंके दर्शन करनेका, और तीसरा पनिहारियोंके वचन सुननेका ।

कितने ही अवधान अपने आप आ जाते है इसकी सारा तो वाचक ! तू भी देखता हे न ?

इतनेमें एक बालमण्डली खेलती-कूदती, दौडती-उछलती, हँसती बोलती आई और गई, मानो बुल बुलके बच्चे ही नहीं ! नगरके फरिश्ते ही न हों !

प्रभात जम गया था । मेरी आतुरताके ऐसे धूपके तार तन रहे थे । तेजमें से ऊष्माभी प्रकट होने लगी थी।

परन्तु यह कौन ? नगरमें होकर आ रहीथी वहीं थी यह । वही मेरी पूर्णिमा की प्रमोद प्रतिमा, अन्तरमें की मेरी आशामूर्ति ।

पचवटी की वटजटाओंको पकड कर मै कोंपलों को गिन रहा था । सूर्योदय होनेसे कमलसम्पुट खिले उस तरह मेरा अन्तर प्रफुल्लित हो रहा था ।

परतु यही है वह ! हरिणीकी गतिसे आजभी वह आरही थी । सिंही की भावना उसके चारों ओर उडती फिरती घूम रही थी । बाहु कमान के नीचे एक और अङ्गुलियों में दूसरा—इस तरह उसने जल बेवड़ेके दो कुभोंको फूलोंके दडेके समान लटका रक्खे थे । चरण उल्लाससे उठ रहे थे । नयन तीनों लोक पर नजर डालतेथे और लोक लोकका माप करते थे । अनङ्गके बाणके समान भौंहों के श्याम कमान तान रक्खे थे । आसमानी घाघरीपर उषा रगी ओढनीथी । भीतरसे केसरियाँ चोली

झलमला रही थी। मुखपर स्मित रेखा थी और फरकता हुआ अधर गीत गुन गुना रहा था। इस गीतके लयमें नृत्य करते हुएसे चरण चल रहे थे। आती हुई ऐसी मालूम होती थी कि प्रभातकी तेजोमयी मूर्ति ही है! कौमारकी-शुद्धमपापविद्ध-निर्मलताही है! सलूनियोंका रस लावण्य ही है!

कामिनियों की कविता की कमनीयता ही साक्षात् हो रही है! मेरे अन्तरके पूर उसके चरणा में जा ठिले। मेरे चेतन उसके पदपङ्कजमें जाकर फैल गये। मेरी आशा और प्रार्थना सुन्दरी देहमें प्रकट हुई मुझे देख पडीं।

और वहां खिली हुई पंखडियो वाले दो कमल, उसकी ओढनीमें, चोलीमें, वस्त्रमें, जैसे भरे थे वैसे ही उसके मुखपट पर भी गुँथे हुए थे वे ही खिली हुई पंखडियों वाले कमलके पुष्प—के पुष्प।

मुझे जान पडा कि जगत का सारा—का—सारा सौन्दर्यधन मूर्तिमान होकर मेरी ओर आरहा है। वेलकी कोपलोंकी तरह उसका अग अग फरक रहा था। सरोवरकी लहरोके ऐसी उसकी साडीमें सलवट पडी हुई थीं। घटाके घेरके ऐसा उसकी घाघरीकी झूल का घेर था। चन्द्रमाके चिह्नके समान उसके मुख चन्द्र पर कुंकुमकी बेंदी सुहा रही थी। मध्य रातकी आकाश गगाके ऐसी उसके केशासनमें मॉग की रेखा फैली थी। रजनीके घूंघट हटाने पर प्रभातके विविध देववर्ण आकाशके मुखपर झिलमिलाते है वैसे ही देववर्ण उसके मुख मण्डल पै झलक रहे थे। देहकी पंखडि-योंपर उसके उरभावके मन्त्र लिखे हुए थे और इन पुण्यके मन्त्राक्षरोंमें प्रभुताके ही पाठ थे।

नगर की सौभाग्य देवीके ऐसी आशिषें देती हुई वह आई और मेरे पास होकर जल भरनेको गई। जगतके गुरुत्वाकर्षणका मध्यबिन्दु ही न हो इस तरह सहज भावसे मेरे प्राणविनिमय कर, अपने प्राण चुनक से मेरे चेतनका आकर्षण कर लिया और उसे झोली मे ९

जादूगरी रस जोगन चलदी। सूर्य जिधर जिधर फिरे उधर उधर ही सूर्यमुखीके फूल फिर जाते है। मेरे नयनके फूल मेरे सूर्यके पीछे पीछे फिरते थे।

तो भी मै तो पञ्चवटीके पत्तेही गिन रहा था।

दण्डकारण्यमें सीतामाता पानी भरने को सञ्चार करे वैसेही वह हमारे नगरकी पञ्चवटीमें पानी भरनेको पधारी।

पानीके तीरपर सखियोने उसे मार्ग देकर सत्कार दिया। पानी भरनेको वह जलपर नमी तो जान पड़ा कि सागर पर नमा हुआ इन्द्र धनुष की लताका टुकडा ही न हो!

कितनीही सखियोंके बेवड़े भर गये थे, कितनीकके भरा रहे थे, सब इसकी बाट देखती हुई खड़ीं थीं। एक अधीरी सखी बोल उठी—उषा! तेरा रस बेवडा भराभी?

सब सखियॉ हॅस पड़ीं, मानो मोतियोंके थाल न बिखर गये हों!

किसी महासत्यकी आकाशवाणी की गर्जनाके ऐसा वह एक बोल, वह एक शब्द ' उषा, मेरी अन्तर्गुहामें गाज उठा और जीवनकुजमें आदिसे अत तक व्याप्त होगया। पूर्णिमाको प्रकट हुई थी, प्रभातमें पधारी थी, बहनने परखी थी वही है यह उषा मेरे जीवनकी ज्योति।

उषाने हँसकर कहा, नहीं, अभी मेरा रस बेवडा अधूरा है।

झरते हुए जलके कणभी ऐसे मधुर नहीं होते ब्रह्माण्डभरमे माधुरीके सीत्कार तिरते फिरते है और नर नारियोंके कानमे कुछ मधुर मधुर फूंक मार जाते है, वैसीही एक अगम्यकी लहर आई और पुष्प की सुगन्धकी सी कुछ फूँक मेरे अन्तरमें फूंक गई।

इसके बाद क्या हुआ सो मुझे कुछ मालूम नहीं है। ध्यानयोगमें योगीजन जैसे डूब जाते है वैसेही मै कहीं डूब गया। जगा तो पञ्चवटी में मेरे सिरपर एक मैना बोल रही थी और उसके सिरपर मध्यान्ह का सूर्य तप रहा था।

प्रकरण ३ रा.

कुमारिकाओंका उद्यान



षा के लिये उदय हुआ इतना पूज्य भाव परमेश्वरको छोडकर और किसीके लिये कभी मेरे हृदयमें उदित न हुआ।

कन्याशिक्षण के रसमय क्रियाधर्ममें कभी आपको रस पड़ा है ? कर्मठोंके क्रियाकाण्डसे वेदान्त अलग है उतने ही अलग हमारे छोटेसे राज्यके अधिकारियोंके चेतन भाव कन्याशिक्षणसे अलग ही थे।

एक चौमासे में हमारे नगरकी कन्याशाला की कार्यवाहीमें मुझे ऐसा रस पडा कि एक मखोली ने तो यहाँ तक कह डाला कि मै विधवा अध्यापिका के साथ विवाह करनेवाला हूँ।

कुमारिकाओंके शिक्षणका प्रश्न भविष्यकी प्रियतमाओंका प्रश्न है, वर्तमान और भावी प्रियतमोंके मनका महा प्रश्न है। नेत्रपल्लवी से पीतमप्रिया आपसमें एक दूसरेको पढाते है ऐसे ही अक्षरपल्लवी से भी पढाया करें तो इस प्रश्नके उत्तर कितने सुगम हो जावें ?

किसी नगर सेठकी छोड दी हुई पुरानी फुलवाडी तो देखी होगी। फूलोंके पौधोंकी जगह क्यारियोंमें घास उग रहा है। फलके वृक्षोंकी शाखायें कुम्हलाई हुई हैं। आधे पत्ते खिरे हुए हैं। सफाई का ठिकाना नहीं है। जगह जगह सूखे पत्ते और कचरा फैला हुआ है। इस तरह गंदगी और मैलेपन का भण्डार होनेपर भी गन्धवतीके रस गन्ध कहीं कहीं आ रहे हैं। कन्यापाठशाला भी मुझे ऐसी ही जान पडी। जैसा माली वैसी फुलवाडी। अव्वल तो बालविधवा अध्यापिका ही घरके और लोक समाजके चावमें बढी हुई थी।

अर्ध शिक्षिता थी। इससे सौभाग्यके उत्साही उमग तेजकी जगह वैध-व्यकी निरुत्साही निराशाकी छाया शालामें उड रही थी। मास्तरानी-योंके थे वैसेही भमके वाले या गदे कपड़े विद्यार्थिनियोंके भी थे, क्योंकि भमकेको स्वच्छता समझी जाती थीं और गदेपनको सादाई। ऐसा होनेपरभी तेजस्वी अगोंपर थे मैले कपडे सूर्य परके बादलके ऐसे सुहाते थे। तख्ते पर आधा हिसाब कर रक्खाथा। पट्टियोंमें लिखा हुआ ठीक न किया गया था। छोट २ चिउटों की लामके ऐसी परन्तु स्वच्छ अक्षर-मालाथी। वाक्यरचना पुरुषवर्ग की अपेक्षा सहज अच्छी थी। कचरेमें-से भी कन्यारत्न खोजकर स्वीकार कर लेनेकी आज्ञा देने वाल महर्षिने इस भविष्यको देख कर ही तो आज्ञा न दी थी? शालाके इस कचरेमें भी अनेक रत्न दमक रहेथे।

और यह बातभी न थी कि शाला कभी स्वच्छ होती ही न हो। इनामके समारम्भके वार्षिक दिनको, राजेन्द्रकी जन्म तिथिको मिठाई बटती तब, इस तरह साल भरमें चार पाँच वार्षिक पर्वोंके महादिन को शालामें स्वच्छताका राज्य स्थापित होता था। इसका कारण यह था कि स्वच्छता नित्यकी आवश्यक वस्तु न समझी जाती थी एक शृंगार की सामग्री मानी जातीथी।

इस महर्षिकी आज्ञापाल मैं अपने रत्नको खोजकर स्वीकार करनेको गया तब शालामें कन्यायें सुनहरी-रुपहरी भरतका काम कर रहीथीं कितनी ही गूँथ रहीथीं। कितनी ही पुराने गीत गारहीं थीं। एक वर्गमें वाचन चल रहाथा। पहिले दिन तो सब दर्जोंमे घूम फिरकर एक दर्जा देख लिया। जाते ही अध्यापिका को दस रुपैये दिये और कहा, शालाके आसपासके ऊजड मैदानमें फुलवाडी बनवाना और कमरोंमें गुलदस्ते रखवाना। सब दर्जों की पहली पाँच कन्याओंको क्यारी व फूलके पौधोंकी सम्भाल लेनेकी जिम्मेवरी देना। इससे ऊँचे नम्बरपर रहने की स्पर्धा भी जागरित होगी।

हिमाद्रिमालाके ऐसा बडा भारी और अचल मेरा सिद्धान्त था कि शालामें पढती हुई सरस्वतीकी पुत्रियोंमें ९५% गृहिणी धर्मको स्वीकारेंगी, और इनमें भी ९०% टके गरीब या सामान्य स्थितिके वरको वरेंगी। इससे मैं चाहता था कि पाठशालामें बनावटी–दिखावटी अमीरी रग की खर्चीली शिक्षाकी बजाय कुटुम्बसेवाके गृहिणी धर्मका उच्च ज्ञान देने के लक्ष्यको साम्हने रखकर पाठशाला चलाई जाय। इस आकाक्षा के अनुकूल कुलधर्मकी पवित्रताके पाठ वहॉ पर सबको सिखाये जाते थे।

उषा घरको चलायेगी तब केसे चलायेगी, कुलमन्दिरों को कैसे बनायेगी, इसकी तरगें मुझे बार बार आया करती थीं। आज तो यह कविता आस पास फैली हुई है और उषाके रस सुहावने गृहिणी भाव के उद्यान में ही हम बसते हे।

इसके बाद नये रास सिखाये गये। अग अग के नये नृत्यमें कौमार की उर्मियॉ उछलने लगीं। इस समय ये बालायें तन्वङ्गी बेलें न रहकर, वसन्तके अनिलमें झोले खाती हुई, मञ्जरियों से लचकी हुई आमकी रसवन्ती शाखाओं के सामान प्रफुल्लित हो उठीं। सबके अन्तर में रस तरग उछल रहे थे और अग अग पर मञ्जरियॉ प्रकट होती थीं। वेल की छटा और लचक के कारण पत्तोंके हिलनेमें सहकारी शाखाओंकी रस मयी रेखाछटा तैर रही थी।

सुन्दर कलाओंके शास्त्रमें लिखा है कि सुन्दरता कुछ दुबला–पतलापन नहीं है किन्तु छटा आन्दोलन और तेजस्विता है। अश्वशालामें पानीदार बछेरे और बछेरी होते हैं वैसेही कुमार और कुमारियोंको भी पानीदार, सुन्दर, चेतनभरे, आत्मवान विकसित करने चाहिये। यही सारी पाठ-शालाओंको स्थापन करनेका हेतु है। सब शिक्षाओंका सिद्धान्त हे, लक्ष्य है।

म जैसे सिखाता और सुधारता था वैसेही उस कन्यापाठशालामें सीखता और सुधरताभी था। फूलकी पँखडियों के ऐसे स्वाभाविक हाव भाव और उपपरिमल मुझे वहा देख पडते थे। कुछके अन्तरमेंके अकुरोंके किरण खुलते हुए मुझे वहाँपर दिखाई देते थे। लावण्य और लज्जा, रसिकता और विनय, उड़ उड़ करती हुई बालविहगीकी सुकुमार पखोंके ऐसे मुग्ध कौमारभाव का मै वहाँपर अनुभव करता था। नये रास सीखकर जो कर बतायगी उसे मेरी माताकी ओरसे इनाम मिलेगा ऐसा सूचित करनेके साथही मैंने भी कितनेही पुरानें रास उतार लिये। कई एक पुराने अलकारोंमें होता है, कई एक पुराने रीति रिवाजोंमें होता है वैसे उन पुराने रासोंमें भी कई एकमें सुवर्ण सत्त्व था, निखालस सव–का–सब भरपूर सुवर्ण था।

हृदयकी भरतीने बहुतही उछालाभरा–तूफान किया इससे कुछ दिन मैंने वहाँका जाना बन्द कर दिया। परन्तु सुबह श्यामको पाठशालाके खुले हुए मैदानमें मै जाता और कुमारियोंके उद्यानको देख आता था। उषाके पौधेके साम्हने मेरे पैर रुक जाते थे गतिजल जाता रहता था। वह क्यारी उषाके हृदयकीही क्यारी न हो इसतरह दर्शन मुग्ध होकर मै उसे निहारता था। उसके अङ्कुरोंको मै इस तरह पपालता था कि मानो उषाके हृदयके अङ्कुर ही न हों।

एक दिन विद्याधिकारी साहिब इन क्यारियों में मुझे मिले। इनकी आँखों म मद था, इनकी भोंहों पर आधिकार छा रहा था। आदिव्यजन बढाकर कितनेही इन्हें विद्याधिकारी कहा करते थे क्योंकि विद्यापर इन्हें ऐसे ही भाव थे। इन्होंने मेरा उपकार मानकर कहा कि अच्छा उद्यान लगाया है। कितनोंकके शब्द नाभिकी गभीरतासे निकलते हैं, कितनोंकके हृदय की लगन से प्रकट होते हैं, कितनोंकके दिमागकी बुद्धिसे झरते हैं, इनके शब्द मुखकी ताकमें से चले आते थे। मैने कहा, आज

तो बीज बोने है, परिपाक तो परमेश्वर की कृपा पर निर्भर है। विद्याधिकारी साहिब अपने आपको नास्तिक कहते थे और नास्तिक ही थे भी, इससे परमेश्वर का नाम सुनते ही छू न गये हों इस तरह साहेबजी कहकर चलते बने।

जगतके अच्छे-से-अच्छे कवि दार्शनिक पैगम्बर वगेरा वगैरा केवल बीज ही बोते है। परन्तु इस अनन्तता की बुवाई की सिचाई और रखवाली आदि कर अनन्त पाक अनन्तता की अनन्त प्रजा पाती है। मुझ अल्प प्राणीके प्रयत्नों को तो आज ही की आशा थी।

उषा दर्शन मेरे आत्मा का प्रथम अभिलाष था। उसकी कौमार मूर्तिके आदर्श मुझे स्वप्नमे भी आमन्त्रण देते थे। मेरे आत्माका अद्वितीय अभिलाष और आशीर्वाद यह था कि मेरी उषाके ऐसी उषायें संसार के सब कुमार्गोंको मिलें। उषा अद्वितीय थी इसी लिये मै अन्य कुमारियोंको उषाके ऐसी ही सजाने का प्रयत्न करता था।

उस जगद्विख्यात शरत् पूर्णिमा की रातको श्रीकृष्णचन्द्रने राधिकाजीको रास रमण कराया तब निज कृष्णरूप के गुणे कर करके गोपिका परिवारकी प्रत्येक रसकान्ता को रसकान्त समर्पित किया था, वैसे ही मै भी उषाकी सखी मूर्तियोंको घड घड कर प्रत्येक रसकुमार को रस कुमारिया समर्पण करने का अभिलाषी था। कहाॅ सूर्य और कहाॅ उसकी किरण ? कहाँ श्रीकृष्णचन्द्र और कहा मै ? यह तो मै समझता था परन्तु परमार्थ की धुन में मेरी यही आशा थी। मेरे अन्तर में से निरन्तर ऐसे आशीर्वाद निकलते रहते थे-मुझे मिले ऐसा सबको मिलना।

अक्षर का और वाचन का इनाम उषाने जब मुझसे लियाथा उस चिरस्मरणीय प्रसग को मै अभी तक भूला नहीं हूँ। उस दिन प्रभात की शाला थी। रजत निर्मल प्रकाशमें सुनहरी धूप की जाजम बिछी हुई थी। स्वच्छ और छटादार कुमारियोंके अनेक रंगी मयूर, कलाप

को इकट्ठाकर और किलङ्गी को सवारकर झुड–के झुड एकत्रित हो गये थे। अनेक के अक्षर भूमितिके छोटे छोटे चित्रोंके ऐसे बहुत ही सुन्दर थे। परतु उषाके अक्षर ! अध्यापिकाने कहा–ये तो मोती के दाने हैं। मयूरके देहके ऐसी ओढनीमेंसे हाथ बढाकर उषाने पाटी रक्खी तब कलापमें मोर पिच्छके मृदुओंकी मालायें न गूथ रक्खी हों, इस तरह का मुझे भास हुआ। उसमें मैने विधात्री के लिखे हुए अपने भाग्याक्षरों को देखा। सब ने कहा इनाम उषाका है।

और वाचन ! पृथ्वी लोककी बोलती हुई कोयलें तो आपने सुनी होंगी परन्तु यह तो देवलोककी कोयल बोल रही थी। मैने सिखाये थे वैसेही शुद्ध और पृथक् पृथक् वर्णोंच्चार और शब्दोच्चार कई एक बालिकाओंने किये। कितने इनाम देंगे इस प्रकारकी चिंता हो रही थी कि उषाने वाचन प्रारम्भ किया। 'श ष, ल ळ,' के उच्चारणमें भूल होना तो दूर रहा, उलटा कुछ ऐसा विशुद्ध सुकुमारत्व और माधुर्य यह बाला उच्चारणमें भर देती थी कि आश्चर्य ! आश्चर्य !! सन्धियोंका ऐसा पदच्छेद करती थी कि अध्वर्यु को शरमा देवे। शारदा की वीणाके ऐसा कठ माधुर्य तो कई बार सुनाथा और कई एकोने सुना होगा, परन्तु ये तो साक्षात् वागीश्वरी की वाग्धारा के लावण्य और लालित्य थे। सारंगी के सवादी सरोद बहुतसीयों ने वाचनमें सुनाये, कितनीयोंने सितार की रणकती हुई गतें बजाई, कुछेकने पियानोंकी अलग अलग सुरमाला गजाई, परन्तु जलतरगके न्यारे न्यारे मधुर मधुर बोल तो उषाने ही बोले। सब बालायें एक स्वरसे बोल उठीं कि वाचनका इनाम भी उषाका है।

पाले हुए हरिण लजाते नहीं है, शकुन्तलाका मृग शरमाता न था, उषाभी हँसती–खेलती आई। मृगी–की सी विशाल आँखें, मृगचर्मकी सी तेजोमयी ओढनी और हरिणीके ऐसे सुकुमार चरण थे। सूर्य किरणके ऐसे उसके पदकिरण नृत्य करते आ रहे थे। आखें खुली हुई जगतके

तेज को इकठा कर पी रही थीं। मुखपर उल्लास और आल्हाद था। वीराङ्गनाकी निर्भयता और ओज ललाटपर दमक रहा था। उषाके नेत्र न नमे परन्तु मेरे नम गये। जगदम्बाकी ज्योतिज्वाला न झेली जा सकी। इनाम देते-देते फूलोंके पौधे की शाखाके समान मेरी अङ्गुलियाँ धूज उठीं। काव्यकला के मुकुटमणि जगद्विख्यात मेघदूत और अभिज्ञान शाकुन्तल इनाममें दिये। परतु इन सौन्दर्य चूडामणि काव्य युगल से भी विशेष सुन्दर रस काव्य तो मेरी उषा कुमारिका स्वय थीं।

" देवको क्या अर्पण करें? देव मन्दिरमें देवके पास भेट रखते हैं। उसी भाव से मै उषाको इनाम दे रहा था। उषा स्वीकारती थी मै अनुग्रह मानता था।

उस दिन दो पहरको देह खडमें से हृदय देशको खोदकर आँखों के साम्हने रक्खा और पृथक्करण करने को मैं बैठा। उषाके रसके निर्झर कहांसे प्रकटते थे? उसके नयनमें थे या मुखमें? उसकी छटामें थे या सौन्दर्य में? उसके तेज स्वरूपमें थे या नृत्य-उल्लास-आल्हादमें उषाके आकर्षण कहाँसे आते थे? उषाकी कौनसी विभूति मुझे न्योत रही थी? मुझे जान पडा कि मेरा श्रम मिथ्या है। आकाशके अग में की अनन्त कोटि चादनी में से रातके रस निर्झर बहते है, वैसे ही उषाकी अग कला के छिद्र छिद्र में से रसके झरण झरते हैं। विराटके अद्भुतत्वके पृथक्करणके उतनाही उषाके अद्भुतत्वका पृथक्करण कठिन है।

सौन्दर्यके उपवनमें से ये ही पुष्प मुझे क्यो नोतता था? कुमारिकाओंके उद्यानमें से उषा की ही रस सुगन्ध मेरा आदर क्यों करती थी? मैने गहरी चिन्तना की और एक उत्तर मिला।

सीता और द्रौपदी, तारा और दमयन्ती सहनशीलताकी क्षमया धरित्री-की जगद्वन्द्य मूर्तिया है। जूलियट और शकुन्तला, लैला शीरीन और जुलेखा-शयनेषु रम्भा-की रसलोल प्रतिमायें हैं।

लोरा और बियट्रिस कविजनोंकी महा कल्पना की राजकुमारियाँ हैं। परन्तु उषा! सत्यलोकके परम सत्यके ऐसी उषा! पारिजातके पुष्पकी-सी उषा! देवलोककी देवाङ्गना थी, प्रकृति की प्रथम पुत्री थी। आकाशको भी अधर उठाकर मानो वह चलती थी। पृथ्वी की परिसीमायें भी मानो उसके मार्ग की रेखायें थीं। तारिकाओंके भी तेज के पार जाते हुए उसके दृष्टितेज मानो ब्रह्माण्डपर विहार करते थे। कमलदलके ऐसे उसके पैरोंकी नृत्यगति वायुराजकी लहरियोंके ऐसी सरसर करती थी। उछलती हुई उसकी अङ्गधारायें ऐसी जान पड़ती थीं कि पृथ्वीके पुटोंको फोडकर पातालगगाकी रस धारायें ही न उछल रही हों! जयके केतुसी, स्नेहकी लतासी, परम सत्यकी मानवी कलासी, उषा उल्लास करती थी। वह दीन हीन सहनशीलता न थी, वह विलासमयी खेलकी गुडिया न थी, वह कोहोरेकीसी केवल कल्पना न थी। वह आशा और उत्साह की, प्रेरणा और प्रतिभाकी तेज कलिका थी। वह रसिकता और आनन्दकी, कविता और सौन्दर्य की देवलतिका थी। वह सच्चिदानन्द की परम भावकला थी। जगतको सह लेनेको नहीं, परतु जीतनेको, शोभानेको ही नहीं परन्तु सच्चा सिद्ध करनेको, कल्पित बनाने को नहीं परन्तु उसके परदोंके पीछे छुपी हुई गहन भेदावलीको सझने-समझानेको वह जगतमें अवतरी थी। सौन्दर्यके उपवनमें कुमारिकाओंके उद्यानमें उषाका यह व्यक्तित्व था और यही मुझे आमन्त्रण दे रहाथा।

सौन्दर्योद्यानकी सब कलिकायें ऐसी ही खिलें तो? मेरे अन्य प्रयत्न इसी ओर होते थे।

प्रभु अपनी प्रभुतासे भक्तका आकर्षण करते हैं। इसी प्रकार उषाकी प्रभना मेरे भावका आकर्षण करती थी। प्रभुकी विभूतियोंका पार प्रभु-भक्तोंने पाया नहीं है, मैने भी उषाके विभुति महलका पार नहीं पाया और न पाऊँगा ही। ब्रह्मके समान ब्रह्मकला उषाभी अनन्त ही है।

प्रभातकी उषाके रंगकी सितारोंसे गुथी हुई मखमली पट्टी मैंने उस रोज खरीदी थी। इतिहास और भूगोलमें–मानव जातिकी अद्भुत वार्ता और मानव जातिके महिमावाले मन्दिरोंकी मनोवेधक कथामें–पहले नम्बरपर जो आवे उसे वह देनी थी। सूर्य और चन्द्रके समान जगतके मार्गमें प्रकाश डालनेवाले नामी नामी स्त्री पुरुषोंकी मर्मगर्भित जीवन कथायें इस शालामें सिखाई जाने लगी थीं। यह इनाम भी उषाने जीता और उषारंगी पट्टीसे अपनी बेणी बाँधी।

परीक्षक गणितकी कडी परीक्षा लेते थे। इससे यह विषय ठीक सिखाया जाता था। इससे पट्टी पहाड़े हिसाब सबको कंठ थे। परन्तु जिन्दगीके कठिन हिसाब कन्याओंको सिखाना बाकी था। अङ्कगणित और वस्तुगणितमें कितना भेद है यह तो हम सब जानते है न?

'क्या जाने व्याकरणी? वस्तुको क्या जाने व्याकरणी?' इस सूत्रके सत्यका पालन करके शालाके अभ्यासक्रममें वस्तुज्ञानै पर भार दिया जाता था।

उषाका यह शुक्लपक्ष था। चन्द्रबिम्ब कभी अपूर्ण नहीं प्रकाशित होता परन्तु शुक्ल पक्षमें चन्द्रकला प्रतिदिन विकसित होती है वैसे ही उषाकी रसकला विकसती थी। वसन्तोत्सव वाले वसन्तचन्द्रिकाका जैसे सत्कार करते है वैसेही भावसे उषाकी चाँदनीका मै सत्कार करता था। उषा मेरे जीवनका शुक्ल पक्ष थी।

कन्याओंकी शिक्षाका प्रश्न जैसे भविष्य की प्रियतमाओंका प्रश्न है वैसे ही भविष्यकी माताओं का भी प्रश्न है। अन्नपूर्णा की सब पुत्रियाँ भोज्येषु माता–सी विष्णुधर्म पालने वाली वैष्णविया हैं। इसलिये पाक-कला सिखाने का दिन भी पाठशाला में ठहरवाया था। खोटे रुपैये की भांति अनुकरण का ढोंग रखने वाली कितनी ही सेठोंकी सेठानिया भी पाठशालाको देखनेके लिये पधारती थीं। उन्हें यह पसन्द न आता

था। रसोइयोंके भगजाने पर वर और बाल बच्चोंको स्वय कच्चे-पक्के परोसा करती थीं। इस बातको भुली नहीं तो भी गृहिणी धर्ममेंसे पाककलाका बहिष्कार करती थीं। दूध पिलाने के इतना ही भोजन करानेका भी कुदरती गृहिणीधर्म है। धायोंसे दूध पिलाने वाली और रसोइयोंसे भोजन बनवाने वाली इसे समझती न थीं। इनके जैसी केवल उपन्यास पढनेवालियोंकी यह पाठशाला न थी। इससे यहाँ तो भोजन करानेकी रसिक और नित्योपयोगी कलाओंकी शिक्षा कुमारिकाओंको दी जाती थी। वार त्योंहार को स्वस्तिक पूरे जाते थे, चोक भरे जाते थे, मोर मैना आदिके माडने बनाये जाते थे, भाति भातिके रगों से चित्र बनाये जाते थे, चित्रविद्याका यह प्रारम्भिक सोपान था। कभी कभी भाति भाति की भोजनकी चीजों का प्रदर्शन भराता था। थोड़े समय में और थोडे व्ययसे कैसे रसाई की जासकती है इस बातके ग्रहशास्त्रीय सिद्धान्त सिखाये जाते थे। नित्य की चीजें पाठशालामें न राधकर प्रत्येक बालिका अपने घरपर राधे परोसे और नोट करके लावे ऐसी सूचना मैंने की थी। अध्यापिकाने शिक्षाविभाग को लिखा, शिक्षा विभागने सब सूचनायें मजूर करलीं और ऐसी अच्छी व्यावहरिक सूचनायें देनेके लिये अध्यापिकाको धन्यवाद भी दिये।

हमारी शाला गृहिणिया उत्पन्न करनेकी थी, कुछ पुतलियां बनाने की न थी।

आरोग्य विद्याके और गृहवैद्यकके मूलतत्वोंकी प्रथम पुस्तक शालामें पढाई जाती थीं परन्तु इन विषयोंके पुस्तकी ज्ञानकी अपेक्षा अनुभव बडा गुरु है। इस बातका समझना बडा कठिनतासे सबके मनमें उतारा। भविष्यकी मातायें अपनी अपनी माताओंके हाथमेंही कुछ शिक्षा पावे यह इष्ट ही है।

धर्म सिखाना नहीं, परन्तु पलवाना प्रारम्भ किया। अध्यापिकाको व्याख्यान देनेका शौक था यह बात मैंने जानी थी। मेरे घरके पासके मन्दिरकी वृद्धा पुजारिनको दक्षिणा देकर अध्यापिकाको मन्दिरमें नित्य कथा करनेको बुलाया। अध्यापिकाको द्रव्य भी प्राप्त हुआ और उसका उपदेश देनेका शौक भी निभा। समय बीतनेपर वह विधवा कथाके रंगमें रंगा गई। वैधव्यके दुखका दिलासा पाकर उसने सेविका व्रतका परमधर्म अङ्गीकार किया, शुद्ध और सच्चा ब्रह्मसमर्पण लिया, और कुमारिकाओंके उद्यानकी वह अधिष्ठात्री सन्यासिनी-सी हो गई। इस तरह धर्म सिखानेके स्थानपर पलवानेका सुभीता हो गया!

मुझे बार बार यह विचार आता था कि प्रियतमा कैसी चाहिये इसे प्रियतम समझते है, और इसी लिये कोई कोई पुरुष अपने अभिलाष और आदर्शके अनुकूल कन्यापाठशालाओंको सुधारनेका प्रयत्न करते है। इसी तरह प्रियतम कैसे चाहिये इस बातको प्रियतमायें ही समझती है। यदि उनमें से कोई अपने सुन्दर अभिलाष और आदर्शके अनुकूल कुमारशालाओंको सुधारें तो कैसा अच्छा हो? बछडोंके घेरके ऐसी कुमारशालायें, तो कितनी अच्छी सुजनताके मडप-क्री-सी हो जॉय?

सुन्दर-से-सुन्दर महलके सौंदर्य सुन्दरीकी सुन्दरताके साम्हने मंद पडते हैं। प्रियतमाके लिये प्रियतम अपनी पर्णकुटीर या प्रासादको निरन्तर क्यों न सजाया करे तो भी प्रियजनके योग्य आवास आज-तक किसीने सजा पाये हैं? उषाके लिये यह सब मुझे अधूरा अधूरा लगता था।

कुमारियों और उनके भाइयोंके लिये एक स्पर्धा खडी की थी। भूत-कालका इतिहास पढे और वर्तमानका बनता हुआ इतिहास जाने नहीं यह योग्य नहीं कहा जा सकता। अतएव आधुनिक विद्वानोंके नये

नये ग्रंथ और वर्तमान समयके सच्चे झूटे चित्रोंके रेखाचित्रके ऐसे वर्तमानपत्र, जहाँ शक्य हुआ वहा, कुमारियोंके भाइयोंके साथ पढनेकी व्यवस्था की गई। जहा ऐसा सम्भव न था वहा सखी मडलीमें पढनेकी तजवीज हुई। उपा अपने भाइयोंमें सदा बढकर रहती थी।

हमारे नगरके एक ससार निरीक्षक और वस्तु विचारक मित्रने एक दफे मुझे कहाथा कि जगत भरके जवानोंको रसिकायें चाहिये गृहिणिया नहीं, और इसके सुबूतमें उन्होंने सारी पृथ्वीके प्रेमभावके काव्यके भण्डार–के–भण्डार–को पेश किया। भावना देशमें या सिद्धान्त विवेकमें मेरे तो ऐसा रसिका और गृहिणीका भेदही न था। कारण कि मोरके अडोंको कुछ चित्रित करना नहीं पडता। इसी तरह रसिका यदि गृह देशमें रसकी बोवनी करे और उगावे तो गृहिणी हो सकती है और गृहिणी रसदेशमें गृहभावोंको प्रफुल्लित कर और मौराने दे तो रसिका कही जासकती है। मेरे तो आज उपा रसीली गृहलक्ष्मी है और कुल योगिनी रसिका है। चतुराईका सिद्धान्त और अपवादका अनुभव होनेपर भी इस विचारक मित्रके कथनमें सत्याश था। मुझे भी प्रथम दर्शनमें उपाकी रसिकताकी मोहिनी लगी थी, गृहिणी भावकी नहीं, प्रियतमाके गुणतत्त्वके प्रेमियोंको भी प्रियाओंके अगकी और अङ्गको शोभा देते हुए वस्त्रालङ्कारोंकी सुन्दरताके जादूकी चटपटी लगजाती है। जबतक चतुरसे चतुर पुरुपका भी आकर्पण रगीन बारीक साडियोंसे होता है तबतक मनुष्य जाति अपने आपको परख नहीं सकती। परन्तु इस पोतके मोहके कारणही कोई परछाईमेंही फैलती हुई चादनीकी भातिवाली चूँदडीको ओढनेको नहीं लेता। काशीमें ताबे पीतलपर ऐसेही चादी सोनेपर भी नक्काशीका काम होता है। वैसेही हमारे नगरकी कन्या पाठशालामें ताबा पीतल और चादी सोना सभी था। मै उनके मूलतत्त्वोंकी परिशुद्धि करके फिर उनपर भातिकी नक्काशी करना

चाहता था । मुझे सिर्फ यह बात अच्छी न लगती थी कि केवल पतंगकी पाखें खोदी जावें ।

ऊपर बताये हुए कारणोंसे कुमारिकाओंके उद्यान में पुष्प खिले तब भूले पड़े हुए भरने–गूंथने के काम का पुनरुद्धार किया । गृह और प्रिय-जनको सजानेके पुष्पालङ्कार भरे–गूथे जाते थे परन्तु अवकाश के समय। कितनी ही बालाओंकी रसिकता उभराती आती थी और वे चित्र बनाती थीं और दो कुमारिया कविता भी रचती थीं । सुन्दरी की प्रधान भावनायें इस तरह शालामें रसपोषण पाती थीं ।

मूलाक्षरोंमें ये दो बालायें कविता रचती थीं परन्तु मै मानता था'— इस शालाकी बहुतसी बालायें जीवनकी कविता रचेंगी । कितनी ही कुमारिया तो उस समय ही मूर्तिमती कवितायें थीं। जगतमें का सुन्दर से–सुन्दर काव्य लीजिये, मेरी उपा उससे भी सुन्दर थी । उपाके अग अंगमें–से कविताके मार्मिक सन्देश, ध्वनि और व्यञ्जना उड रहे थे।

मै यह नहीं कहता हूँ कि दुनिया में उपाको छोडकर और कहीं सौन्दर्य है ही नहीं । परन्तु अन्य सुन्दरिया सौन्दर्यका अवतार थीं तो उषा स्वय सौन्दर्य ही थी ।

जिस भावसे भक्तजन देव मन्दिर को जाते हैं उसी पुण्यभावसे मैं सदा कुमारियोंके उद्यान में जाता था । मेरी रसदेवीका सिहासन वहा था। उस रसदेवीके चरणोंमें मै धूप खेता था जिसकी सुगन्ध जगमें फैलती थी । जगतकी सारी सरितायें समुद्रमें गिरती है, मेरी सब भावनायें उस सौन्दर्यसागर उपाका अभिषेक करतीं थीं । कन्यापाठशाला इस तरह पुण्य मन्दिर बनी, काठकी या काचकी पुतलियोंकी जगह आत्मलक्ष्मी वाली बाल पुण्यमूर्तिया उसमें सुहा रहीं थीं । उपाके उर के पुण्य रग सारी शालामें उड रहे थे और सब कुमारिकाओंको बधाई दे रहे थे ।

और पुरुष, लोकवन्द्य सभापति और उनकी धर्मपत्नी—सबकी रोक रक्खी हुई सानन्दाश्चर्यकी बदलिया उमरने लगीं, और धन्यवादकी धाराओंके साथ तालियों की महागर्जना चोतरफ़ छागई। परन्तु ये सब कुछ होने पर भी मेरे जीवनका परमप्रसग यह नहीं था, इसके बादका था। गर्जन की घनघोरमें-से कोई सूर्य किरण प्रकट हो इस तरह उषा की नयन-किरणें प्रकट हुई और मुझपर गिरीं। अपने पर बरसते हुए धन्यवादोंको उषाने एक दृष्टिपातके द्वारा मुझपर बरसादिये। सद्भावमूर्ति सभाधीशने उषाको पुष्पमुकुट पिन्हाया था। उषाने उस पुष्पमुकुट के तेज मुकुट उतारकर वह तेजमुकुट दृष्टि-सेतु द्वारा मेरी ओर भेजा और मुझे पिन्हाया। दोनों हाथ जोडे सूर्यकमल की तरह वदन मण्डल नीचा किया और प्रणाम कर मुझे बधा लिया। मेरे जीवन की पुण्यक्षण तो यह थी।

उस दिन हमारे नगरके नागरिकोंकी सभामें विजय डका बजा कि कुमारिकाओंके उद्यान में सर्वोत्तम कौमार पुष्प-उषा है।

लावनी गाई। इसके बाद, सुभटमणि जयमल और फत्ताकी वीर-वत्सल माता और यौवन श्री प्रज्वालित सिंही पत्नी, वीराङ्गनाओंके स्वकीय परिवार के साथ, जगत भरके सारे क्षत्रियवंश विस्तारके परम तीर्थ गिरि चीतोडगढ परसे नंगी तलवार लिये समराङ्गणमें उतर ही है—इस प्रकारका नाट्यप्रयोग कुमारिकाओंने कर बताया। माथेपर मुकुट पहनकर करलतामें शमसेरको धारे हुए जगतको जीतनेके लिये आती हुई महामाया सिंहवाहिनी की तरह नवयौवना राजकुमारीके वीर वेशमें जब उषा पधारी तब सारा सभामण्डप धन्य धन्य के शब्दसे गूंज उठा। इसके बाद नगरोद्धार और विश्वोद्धार का गान गाया गया और इनाम बांटा गया। छोटी छोटी बालाओंको पहले इनाम बांटे गये। किसीने एक लिया किसीने दो लिये। प्रेक्षकजन तालियां देते थे, कितनेही उत्तेजन और प्रोत्साहनकी तो कितनेही विवेक और शिष्टाचारकी। शुक्रकी कलाके ऐसी मेरी बहन आई और अपने इनाम लेगई। फिर अध्यापिकाने नाम पुकारा—' उषा '। बरसातकी धाराओंके समान सबकी दृष्टियां उषाके ऊपर पडी। उषा उठी मानो चन्द्रमा उगा। गगनमण्डलके मध्यमें आता जाय वैसे वैसे चांदनी खिलती है, ऐसे ही ज्यों ज्यों उत्सव मण्डपके मध्यमें उषा आती गई त्यों त्यों उसकी तेजस्विता प्रकट होती गई-बढती गई। उसे सभाक्षोभ नहीं हुआ। विश्व पर विभूति बरसाती हुई स्वयं वागीश्वरी ही न आ रही हो इस तरह वह कुमारिका पधारी। ब्रह्मपुत्री विधात्री हो इस तरह उसने सर्वपूज्य दम्पतीके वारणें लिये। एक-दो-चार-दस इनाम नगरलक्ष्मीजीने प्रफुल्लमुखसे हसते-हंसते दिये और प्रसन्न मुखसे हसते—हसते उषाने लिये। उसने फिर एक बार वारणें लिये और कौमार सौन्दर्यका विजयकेतु जारहा हो इस तरह उडती ओढनी से पीछी पधारी। ज्यों ही वह लौटी कि रोक रक्खा हुआ बादल जैसे एकदम उमडे और गरजे वैसे ही सारे सभामण्डपके स्त्री

अब अब मेरे मन्दिरमें प्रातःकालमें सूर्यतेज शीघ्र आते है, और रातमें चन्द्रप्रकाश ज्यादा ठहरते है, मानों इन देवोंकी ओरसे भी उस जादूको अनुमोदन ही न मिल रहाहो! मैंने सोचा कि वायुराजने खिडकी दरवाजोंके पडदे उडादिये होंगे! सूर्यचन्द्रके जादू कम हुये इससे अनिल देवका भी आमन्त्रण किया गया! परन्तु झरोकेकी बेल सींचकर सवार रक्खी थी उसे देखू ही क्यों?

कितनी ही बार मनुष्य कल्पना पहले कर लेता है और देखता है बादमें!

मेरे कपडोंकी शोभा भी बढचली! मैंने तो उसे देखा न था परन्तु एक ने मजाक किया कि अब अब राजबाग में बहुत जाते हो इसलिये घरमें धोबी रक्खा है या क्या? तब मैंने देखा कि मेरे नित्यके वस्त्रों में सुघडता प्रगट हो रही है! बहनसे पूछा तू उस्तरी करती है तो कहा नहीं, सूर्य की किरनें कर जाती होंगी, नहीं तो क्या वस्त्र चमक सकते हैं? मैंने कहा कि पागल हुई है या पागल समझती है? तो बोली कि चतुर-सुजानः भी पागल होकर पगलापन किया करते हैं।

अभी अभी वह ज्योतिषी के ऐसे और डेलफी की देवी के ऐसे उत्तर देती थी।

सचमुच अब तो जादूके भेद गहरे और अगम्य जानपड़े। एक दिनतो हद होगई। मेरे जेबी रुमालमें, मेरी लिखनेकी टेबिलपर और मेरे सिरहाने मेंसे ऐसी मोगरेकी ताजा सुगन्ध फैलरही थी कि मानों वे फूलके पौधेही न हों! मैं चौंक पड़ा कि मेरे कमरेमें यह इत्र कैसा? बहनको इत्रका शौक लग गया होगा और उसके कपड़ोंके साथही मेरे कपड़े धुल हेंगे ऐसा सोचकर मनको रोक लिया। परन्तु यह बाततो मै भूलही गया कि लिखनेकी टेबिल कुछ कपड़ा न थी या धुलनेको न गई थी। कितने ही जल्दबाज कारणवादी ईस तरह अपने आपको धोका देते हैं।

प्रकरण ४ था.

चन्द्रिकाके मन्दिरमें.



कुछ वर्षोंके पहले हमारे नगरके एक घरकी लकडीसे बनी हुई छत से दुअन्नियां बरसती थीं, भोजन करनेके थाल एक खण्डसे दूसरे खण्ड में अधर उडते थे, थालों में से भोजनसामग्री उडजाती थी और चली आती थी। यह बनाव दिनके प्रकाश में बनता था और लोगों के समूह के-समूह इस घटनाको आश्चर्य चकित नयनोंसे निरखते थे। मेरे घर में भी-ठीक इसी तरह के तो नहीं परन्तु कुछ कुछ ऐसे ही जादू होने लगे थे।

और उन्हें मैंने पीछे से जाना कि ये वात्सल्यके जादू हैं।

एक दिन सायकालको राजबागमें घूमकर आया तो कमरे की छटा ही निलारी नजर आई। चीजें वे-की-वे थीं और जहाँ-की-तहा रक्खी थीं, परन्तु सब की-सब कुछ नवीन ही शोभा से शोभित होरही थीं।

पयोधर की प्रथम पयोवर्षा के बाद धुले हुये वृक्षों की कुंज जिस तरह नई शोभासे शोभित होती है इसी तरह मेरे कमरे की कुंज स्वच्छ होकर शोभायमान होरही थी। कुछ समझ न पडा परन्तु सोचा कि नेत्रोंमें जो राजबागका तेज भरा है वही प्रतिबिम्बित होता होगा।

दूसरे दिन मेरी पुस्तकें सुव्यवस्थित और निर्मल देख पडीं मुझे बडा अचम्भा हुआ। मैंने नौकरसे पूछा कि तूने जमाई हैं? तो कहा नहीं। मैने सोचा कि बहनने जमादी होगी. क्योंकि अक्षर जीवन महाग्रन्थोंको तो हम निर्जीव समझते हैं न?

अब अब मेरे मन्दिरमें प्रातःकालमें सूर्यतेज शीघ्र आते है, और रातमें चन्द्रप्रकाश ज्यादा ठहरते है, मानों इन देवोंकी ओरसे भी उस जादूको अनुमोदन ही न मिल रहाहो! मैंने सोचा कि वायुराजने खिडकी दरवाजोंके पर्दे उडादिये होंगे! सूर्यचन्द्रके जादू कम हुये इससे अनिल देवका भी आमन्त्रण किया गया! परन्तु झरोकेकी बेल सींचकर सवार रक्खी थी उसे देखू ही क्यों?

कितनी ही बार मनुष्य कल्पना पहले कर लेता है और देखता है बादमें!

मेरे कपडों की शोभा भी बढचली! मैने तो उसे देखा न था परन्तु एक ने मजाक किया कि अब अब राजबाग में बहुत जाते हो इसलिये घरमें धोबी रक्खा है या क्या? तब मैंने देखा कि मेरे नित्यके वस्त्रों में सुघडता प्रगट हो रही है! बहनसे पूछा तू उत्तरी करती है तो कहा नहीं, सूर्य की किरनें कर जाती होंगी, नहीं तो क्या वस्त्र चमक सकते हैं? मैंने कहा कि पागल हुई है या पागल समझती है? तो बोली कि चतुर-सुजान भी पागल होकर पगलापन किया करते हैं।

अभी अभी वह ज्योतिषी के ऐसे और डेलफी की देवी के ऐसे उत्तर देती थी।

सचमुच अब तो जादूके भेद गहरे और अगम्य जानपड़े। एक दिनतो हद होगई। मेरे जेबी रुमालमें, मेरी लिखनेकी टेबिलपर और मेरे सिरहाने मेंसे ऐसी मोगरेकी ताजा सुगन्ध फैलरही थी कि मानों वे फूलके पौधेही न हों! मैं चोंक पडा कि मेरे कमरेमें यह इत्र कैसा? बहनको इत्रका शौक लग गया होगा और उसके कपडोंके साथही मेरे कपड़े धुल होंगे ऐसा सोचकर मनको रोक लिया। परन्तु यह बाततो मै भूलही गया कि लिखनेकी टेबिल कुछ कपडा न थी या धुलनेको न गई थी। कितने ही जल्दबाज कारणवादी ईस तरह अपने आपको धोका देते हैं।

फिर एक दिन इस जादूका भेद टूटगया और कामण टामण-करनेवाली वह जादूगरनी पकड़में आगई ।

दो पहरके समय मैं अपने पिताकी दूकानपर जाया करता था और सीखा जा सके वह सीखता था । अनेक तरह की अस्थिर चित्तव्यग्रताके कारण जो होताथा करताथा । नवीन विद्यार्थी की भांति मैं दूकानको जाताथा । परन्तु उस दिन राधिकाजीके वृन्दावनमें पधारनेका मन्दिरमें उत्सव था । पिताजी महाजन मण्डलमें पधारे और मैं घर आया । लता-कुंजके पास वृषभानु दुलारीके स्तम्भित हुए थे वैसे ही गृहकुञ्जकी देह-लीमें ही मेरे भी पैर रुक गये। घरके चौकमें यह कौनथा ! मेरेही रुमालका चढ़ो यह कौन कर रहा था?

भर दोपहरीमें चौकमें चाद चल रहा था ।

बहनने कहा आ ।

कितने ही मनुष्यभी अवलम्बंडेही होतेहैं न ? मनकहता है चल, बहन कहती है आ तब मैं आखें नीची किये हुए अपने कमरेमें चला गया ।

मेरी बहन उषाके ही वर्ग की थी और उसकी सखी थी। उषा का नम्बर पहला और बहनका दूसरा था। उषा सूर्य निकालती तो बहन चन्द्रमा। उषा सुनहरी रगकी थी तो बहन रुपहरी रग की। कन्या पाठशालामें उषा को इनाम मिलने लगे तबसे परस्परका सखीभाव बसन्तकी बहारके समान प्रफुल्लित हो गया।

एक पुष्पलता दूसरी की महमानीमें न आई हो इस प्रकार उषा आज उसकी सखीके यहाँ पधारी थी ! उषा इसतरह पधारी थी मानो जमना जीके यहाँ गगाजी न पधारी हों ?

दस्तोंकी घडी हो चुकी कि मेरी माताकी आज्ञाकी ध्वनि हुई । चन्द्री ! सायकालके लिये चावल बीनो और मटकीमें से दही निकालो ।

मेरी बहनका दुलारका नाम चन्द्रिका था। और मेरी माताका नियम था कि वह छुट्टी के दिन बालिकों को खाली न बैठने देती थी। उसका विश्वास था कि सर्वथा काम न लेने से बच्चे आलसी होजाते है। अत एव पहले काम और पीछे खेलना।

परन्तु क्या यह वही उषा है? वृक्षके लतापल्लव की जालियों में होकर कुजघटाके कलापीके कलाकलापको कोई देखे इसतरह मै अपने कमरेकी जालीमें से उषाको देख रहा था। वह तो शेरनी थी, यह तो गाय है; वह तो उत्साह और आल्हाद की स्वतन्त्रता थी, यह तो चतुराई और सयानपनकी सुशीलता है, वह तो कौमारकी चपलताका विलोल लालित्य था, यह तो प्रौढाकी ज्योत्स्नाकी स्थिर गभीरता है। यह उषा वह थी भी या नहीं?

ओवरीके परछानेमें बैठ कर शान्तिपूर्वक चावल बीनने वाली उषा वही थी, मानो किरणोंके कणोंमें-से-भी कंकर न निकाल रही हो! हरिणी आज घरमें हसी बन गई थी।

परन्तु इसमें क्या कुछ आश्चर्य है? गृहभावना ही ऐसी होती है, तरलको गभीर और चचलको सयाने कर देती है। कुदरतमें क्या ऐसा होता हुआ दिखाई नहीं देता? एक पैर में त्रिलोकगामिनी विराटकी बडी बेटी विद्युल्लता जब गृहमन्दिरके खड-खड में प्रकाश करती है तब चन्द्रिकाके ऐसी सयानी होकर निरतर कैसी शोभायमान होती है? उषाकी ब्रह्माण्ड प्रकाशिनी और विश्वविहारिणी विद्युत् इससमय गृहमन्दिरमें ज्योत्स्नाके प्रकाशसे प्रकाशित हो रही थी। कौमारकी चचल दृष्टिमें जब वात्सल्य प्रकट होता है तब नयनपल्लवमें स्थिर प्रकाश प्रकट होते हैं।

नगरके चौकमें थनगन करती हुई हरिणीके समान छलांगें मरनेवाली वह उषा, आज गृहमन्दिरके चाकमें गिन गिन कर हसीके समान पैर रख

वाली यह उषा हो रही थी, मानो कमलकी पँखडियोंको बिखेर कर चीन ही न रही हो !

सूर्यतेज छत और खुले हुए आंगनोंमें ही प्रचण्डताके साथ प्रकट होते है। परन्तु परछानों (बरामदों) और घरोंमें तो उसकी सुकुमारता ही भासित होती है। गृहमन्दिरके बरामदे ग्रीष्ममें शीतल और शिशिरमें गरम हुआ करते है, प्रभु करे गृहमन्दिरके वे गृहभाव भी सदा ऐसे ही रहा करें।

कितनी ही सुन्दरिया ऐसी होती हैं कि वे बाग-बगीचेमें, नगरचौकमें, उत्सव-मेलोंमें और विवाहादिके समारम्भमडपोंमे ही शोभा देती हैं घरमें नहीं,—घरकी देहलीके भीतर जातेही उनकी शोभाकी साडी मैली होजाती है और सौन्दर्यका रग फीका पड जाता है। परन्तु, फूलमें क्या और क्या फुलवाडियोंमें, उत्सव शृगारमें क्या और क्या नित्य वस्त्रोंमें और गृहभावमें क्या और क्या गृहकामोंमें—चन्द्रकी जैसे प्रत्येक कला सुन्दर है वैसेही—उषाके सौन्दर्यकी ये सब कलायें सुन्दर ही थीं। गृहमन्दिरके झरोकेमें स्थानपके समुद्रके ऐसी गृहदेवी-सी वह विराज रही थी। असुरों को जीतनेवाले विजयध्वजकी तरह जो जगतमें फरफरा रहाथा उस ओढनेकी गृहमान्दिरमें घड़ी की हुई थी।

गगनके अन्धकार में भी जो प्रकाश फैला रहे थे वेही वीरत्व प्रबासे चलने वाले नयन-त्रिशूल, मन्दिरके सिहासन में नमकर झुक रहे थे। वन-वनमें सिंहवाहिनी के जो सिंह शार्दूल-विक्रीडित के खेल खेलते थे मन्दिरमें वे सुस्सेकीसी-सुशीलता धारे हुए छुपकर विराजमान हो रहे थे। जगदम्बाके ऐसी ही जगदम्बाकी कुमारिया भी है। उषाभी ऐसी ही थी।

भरी हुई बदलिया बरसा करती हैं। वैसे ही आज धीर-गभीर उषा-में से वात्सल्यकी धारायें बरस रही थीं। कौशल्याके मन्दिरमें जानकीजी पधारी हों इस तरह मेरी माताके बरामदेमें उषा की एक शिखवाली ज्योति जगमगा रही थी।

गृह मन्दिरके चौकमें माताके प्रश्नकी फिर प्रतिध्वनि हुई –'चन्द्री ! भाईको पूछ देख चाह कहा पियेगा-यहा कि वहा ? ' यहा, और 'वहा' के भेद मुझे कब तक पालने होंगे ! इच्छा यहाकी थी परन्तु पी 'वहां' दूरसे चाहता था उसके पास न गया मेरे अन्तर की पँखडियोंके खुल जाने के भयसे माकी कोठरीमें न गया । चन्द्रिका को मैने 'नाहीं' करदी और नाही किये बाद अपने अविवेक और किसीके आशाभङ्गके कारण पछताया । प्रायश्चित्त ही न कर रहा होऊ मानो, इसतरह पीते पीते आधी चाह ढुलकादी और अवशेष रही को पीने लगा, ऐसा जान पडा कि अमृतका घूटही न हो !

' बहुत काम किया जाओ अब खेलो । उषा ! आना हो । ' माताकी फिर आज्ञा हुई । मेरे अन्त करणमें मानो हथौडा लगा । क्या उषा गई ? जीवन की छिनछिनमें जिसे जीवनकी तरह स्मरण किया करताथा वही, जब मन्दिरमें आई तब तो मै दर्शन करने न गया परन्तु उसे जाती हुई देखनेको मैं उठा । पश्चात्ताप भरीहुई निगाहसे भय खाते-खाते देखा तो,–यह तो मेरी पडोसमें एक बीमार था उसे देखनेके लिये–मेरी माता गई है और उषा और चन्द्रिका तो चन्द्रिकाके मन्दिरम चढ़ आई !

भरी सास–में–सास आई और भूकम्पके समान होने वाला मेरे शरीरका भयकम्प भी धीमे–धीमे बन्द हुआ । हृदयकी धडकनभी ठिकाने बैठी और मेरे जीव-में-जीव आया ।

आरती होनेके पहले परदे गिरते हैं उसी तरह गृहमन्दिरमें थोडी देर तो शान्ति के परदे गिरगये और फिर घटीके समान प्यानोकी छोटी–छोटी शब्दमाला चन्द्रिकाके मन्दिरसे सुनाई देनेलगी ।

उषाके उसदिनके वाचनके समान प्यानोका स्वरोच्चारण स्वच्छ मधुर और सुकुमारथा । चन्द्रिका गारही थी अत एव उषा ही तो बजा रही थी ?

" सखि नटवर। वसन्त थै थै' नाच रहा,
नाचरहा जग नचा रहा,
सखि नटवर वसन्त थै थै नाच रहा।"

प्यानोके रमझमकी तरङ्गमाला मेरे कमरेमें और मेरे हृदयके कमरेमें गरजती हुई उछल रही थी मानो मैनायें उडती-उडती हुई आकर हृदयमें न कूज जाती हों! चन्द्रिकाने अश्रुमतीका वसतगीत जमायाः—

'कोयल मधुर मुरली वनी
नाचे नटवर कान'

उषा और चन्द्रिका दोनों खिलखिलाकर हँस पडीं, मानों सोनेचादीके सिकेही न बिखर गये हों! गीतकी किलोलसेभी इन कल्लोलिनियोंकी हास्य–किलोल विशेष मधुभरी थीं। मुझे नचाती हुई सखिया कौतुकके कौनसे सकेत भावसे हँस पडीं, यह उस समय तो मुझे न जानपडा परन्तु उषाने चन्द्रिकासे जो इतना कहा सो सुनाई दिया कि 'आओ मेरी कोयल रानी'!!

यह गीत यहींसे रुक गया और हास्यकी मौजेंभी शान्त हो गई। गीतलहरें फिर चलीं। लहरों बिनाकी नदिया कहीं देखी है? दो रस-सरिताओंका सङ्गम था फिर रसकी लहरें क्यों कर विराम पा सकती थीं। इस वक्त उषा गातीथी और चन्द्रिका बजाती थी। उषाने कृष्णचन्द्रकी बशीका गीत गाना प्रारम्भ किया और दैवी माधुर्यमयी वशीके समान कठसे ही गाया —

" किनारे आज जमनाके बजे तेरी पिया बसी
सुनाके बोल क्या क्या ये हरे तेरी हिया वसी
घुमेरी आंखमें छाती भुलाती है विरसताको
सरसजीवनके जलभीतर बुडाती है जिया बसी"

आयुषभरमें एकही बार जो गर्जना होती है वही गर्जना आज हो रहीथी। जीवनके जलमें जो ब्रह्मवशी बोलती है उसके बोल आज सुनाई देरहेथे उषा उसी लयसे गारही थी।

परन्तु बिजलीका चमकता हुआ दिया एका एक बुझ जाय और मोगराभी न रहे उसी तरह संगीतका प्रकाश बन्द होगया। प्यानोकी तरङ्गमाला एकाएक टूटगई। उषाकी दैवी कोकिलके मधुरतम माधुर्यकी धारायें एका एक रुकगई।

क्या हुआ सो उस समय तो मेरी समझमें नहीं आया। थोडी देरमें उडती विहगिनीके समान दौडती हुई चन्द्री मेरे कमरेमें आई और बोली ' भाई चल, प्यानोकी कल बिगड गई है सुधारदे।'

आवकारके आदर न मानेथे परन्तु आज्ञाको पाला और चन्द्रीके साथ मैंभी चन्द्रिकाके मन्दिरमें गया।

आखिरकार मैं हारा और चान्द्रिका जीती परन्तु यह सब मुझे पीछे जान पडा।

प्रियतमाकी सान्निध्यमुक्तिके प्रथमानुराग तो सब प्रियतमोंने अनुभव किये और जाने कौन कहेगा कि उसके वर्णन किये जा सकते है? तू अनिरुद्ध हो या न हो, परन्तु तेरी उषाको तेरे स्वप्न आये और फिर तेरा झूला उसके रसमवनमें चला तब, क्या तू तन्द्रा-निद्राके समान रसघुमेरीमें नथा? उपनिषद् कहती है कि ब्रह्मदर्शनसे परममौन प्राप्त होती है। यह हो या नहो क्यों कि ब्रह्मदर्शन तो मुझे बिजलीकी झमकके समान निमेषमात्रही हुए है परन्तु उषा दर्शनसे तो मुझे विचित्र आनन्दाश्चर्यसे भरे हुए मौनही प्राप्त हो गये थे।

अविवेकीके समान मै विवेकवार्ता करनाभी भूल गया। चुपचाप गया, प्यानोकी कलपर उषाकी अंगुलियां रक्खी थीं उनके विद्युद्वाणोंको

देखते-देखते चुपचाप कलको सुधारा और सिरोंके समान चुपचाप खड़ा रहा।

'मौन मौर्ख्यस्य लक्षणम्'

यह वाक्य-ऋचा सत्य होगी ?

रसगङ्गाके किनारे खड़ा होकर मैं गङ्गाजल न पीता था। हृदय उमरा जाता था परन्तु बहता न था। आत्मा बोलता था परतु जीभ खुलती न थी।

चन्द्रिकाके मन्दिरमें प्रवेश करते ही हमारी नयन-किरणें मिली और बोली थीं। मेरा हृदय उछलता था वैसेही-भौरोंकी मालाके ऐसी उसकी भौंहें, नाचती थीं और डक मारती थीं। पवन की लहर में उसकी एक लट उडरही थी मानो चन्द्रमापर सुरेखामयी बदलीकी किलगी ही न फरक रही हो!

मेरी होशियारी, छटा, विवेक, सुजनता और सहृदयके सब अग न जाने किधर चले गये। सिरको मन्त्रमुग्ध किया हो इस प्रकार मै दर्शन-मुग्ध हो खडा रहा। मैं स्वय अपनेको गूगा प्रतीत हुआ अतएव पीछा लौटने लगा।

गहनताको वाणी प्रकट हुई हो इस प्रकार उषा बोली, बैठोगे नहीं ? इन शब्दोंमें प्रार्थना न होकर आज्ञा थी ? मै बैठ गया।

मेरे पसीना टपक पडा। नमते पहरकी कोमल उष्मावाली धूप उषाके अगपर गिर रही थी। उषा बैठी थी मानो गुलाबके फूलोंकी मालाका ढंगही न लग रहा हो ?

चन्द्रिकाने कहा 'उषा गीत गा। वह गीत गा जिसे तू बनाती और मैं सीखती थी। तू गा मै बजाती हू।'

चन्द्रिकाकी अगुलिया नाचती हुई किरणोंके समान प्यानोपर क्रीडा करने लगीं। उषाने वातावरणसे आन्दोलन मचाया और वह गीत गाया

जिसे उषा और चन्द्रिका बनाती और सीखती थीं। इसका एक चरण चन्द्रिकाने मुझसे भी सुधरवाया था।

अहो राज! हमतो पछी हैं गरम देशके,
वहे हिममय वायु
वहा लवी ओछी आयु
राज! हमतो पछी हैं गरम देशके,

अहो राज! हमरे देशमें सूरज सोहते
मलाके सरिया है रग
भरे चित्तमे उमग
राज! हमतो पछी हैं गरम देशके,

अहो राज! हमारी क्यारी में फूल सुगधवे
खिलें कलिया सुमधुर मधुर
ऐसे ही खिले मधुरतर उर
राज! हम तो पछी है गरम देशके

अहो राज! हमारी शितोष्ण हवा है उजली
उसमें तेजकी तरग
ऐसे आत्माके सग
राज! हमतो पछी हैं गरम देशके।

बारीक गले से उषा गारही थी मानों ऊडी अतर्गुहा में से कोकिला न बोल रही हो। किसी को धीरे धीरे बजते हुए सितार के मृदुल झकार अच्छे मालूम होते है, किसी को भास्कर की प्रभाकी अपेक्षा चन्द्रराज की शीतल चद्रिका भली मालूम होती है, वैसे ही उषाने मृदुमजुल स्वरकी लहरिया दैवी धीमी अनिललहरियोंके समान छेडीथी और वे मुझे भली लगती थीं।

मै तो गीत मुग्ध हो मोहमूर्छामें पड़ा हुआ अमृतके स्वप्नोंका अनुभव कर रहा था।

और गीत पूरा होतेही उषाको खासी आई। घोटकर रक्खा हुआ स्वास चढा। चन्द्रिका पनिहारेपर पानी लेने गई तो कुजा दुल गया 'कुछ नहीं, भरलाती हूँ, कहकर मैनाके ऐसी किल्लोल करती उठी और चौकके पनिहारेपर पानीलेनेको चलदी।

रसकी शाखापर पहिलीवार जोडीसे बैठे हो वे भाव तो याद हैं न?

हमारे आज वही समय था और सूर्य और चांद दोनों मानों सन्मुख ही ने आबिराजे हों।

हमारे अङ्गोंमें बिजलिया बहने लगीं और कोयलोंके समान रोमराजि फरकने लगीं।

उषाने पूछा क्या बोलोगे ही नहीं?

मै उठा—बैठा—और न बोला। लजवन्तीकी खिली हुई पखड़िया छूतेही जैसे सकुचित हो जाती है वैसे ही मेरे हृदयकी खिली हुई पख-डिया थोडी देरके लिये तो सम्पुटित ही हो गई।

आकाशकी गहनतासेभी गहरे मेरे भाव क्रीडा करते थे, अतएव इस हृदयाकाशकी गहराईमें शब्द समा जाताथा और उषा इस मौनकोही सुनती थी।

एक मुग्धासे भी मैं विशेष मुग्ध था।

यह वह समय था जब प्रभातके प्रकाश दिवस के महासागर से मिलते हैं। उषाके और मेरे उरके प्रकाशके महासागरों का सङ्गम होता हुआ मुझे जान पडा। क्षितिजपर अम्भोधिमें जैसे आकाश डूबता है इसतरह मेरा उरव्योम उषाके महाम्भोधिमें निमग्न होते हुए जान पडा!

मेरे घरके समीपके मन्दिरमें उत्थापन की नोबत बजी और एक भक्तने भजन छेडा!

" आओ पीतम ! बात करें छिन
रहा न जाता है तुम्हारे बिन
है एकान्त मनोरम हेः
प्यारे ! जल्दी मन्दिर आइये जी ! "

उत्थापन की इस नोबतने मुझे जगाया, भक्तके इस भजनने मुझे प्रेरणा पिलाई और आत्मवान किया।

मै जगा उठा और बरदान पाया।

इस भजनने हमारे अन्तरके परदे चीर डाले !

सिंहासन पर देवीके समान उषा विराजमानथी। प्रेमवन्दना करने को मै उठा। मै क्या करता इसकी तो मुझे आज भी खबर नहीं है, परन्तु मुझे उठता देखकर उषाभी उठी और मेरे फैले हुए दोनों हाथोंको उसने अपनी करलतामें झेल लिये। फूल की पखडियोंमें फूलकी पखडिया गुथे इस तरह हमारे करतल गुथ गये। एक पुष्पकी सौरभ में दूसरे पुष्प की सौरभ मिलजाय इस तरह हमारे हृतेज परस्पर में मिलगये। उषा खिलखिलाकर हँस पडी।

धबड धबड सीढिया चढ विजयका नक्कारा बजानेके समान चन्द्रिका आई और खिलखिलाकर कलोल करती हुई हस पडी।

चकित हो एक एक इनकी और तीक्ष्ण दृष्टिसे देखते हुए मैने कहा उषा।

उषाके हास्यकी मौजें और उछल पडीं। वह बोली उषाकी कुछ उर्वशी नहीं होगई। यह रही उषा कुछ उड नहीं गई, चली नहीं गई। बोलो चाहता हो वही सर्वस्व मागो या लेलो।

उषा और चन्द्रिकाको फिर हास्यका ज्वार चढ आया, टकोरेके समान स्वच्छ शब्दसे चन्द्रिकाने कहा लोग कैसे ठगे जाते हैं ? भाई

साहिब तो योंही समझ रहे थे कि कोई जानता बूझता नहीं है। क्या बोलें? परन्तु एक समयसे उनके काम तो बोल रहे है।

मैने कहा तब तुम जानती हो?

"मुझे पहला इनाम दिया और अगुलीके अङ्कुर फरके उसी तिथिसे' उषा बोल उठी।

मैने कहा, तब आजका नाटक?—

उषाने कहा —यह तो चित्ररेखाने अनिरुद्धका हिंडोला उषा को दिया। जगो अब स्वप्नमें से और चलो रसके सत्यलोक में मेरे अनिरुद्ध!

यों कहकर मुझे कुकुमके छींटों से छींट दिया।

मेरी आखें सदा के लिये खुलगई और मेरे उत्थापन सदाके लिये हुए।

उषा और चन्द्रिका को तो हास्य की उर्मियोंपर उर्मिया उठही रही थीं। भरम फूट गया जानकर मे भी खिलखिला कर हस पडा। उठा और जल भरा मेघ तेजभरी बदली के पास जावे वैसे ही मै उषाके पास गया। नवपल्लव में नवपल्लव मिलें इस तरह हमारे कर सम्पुट हुए। पुष्पहारमें पुष्पहार गुथे इस तरह हमारी करवालिया गुथ गईं। चन्द्रिकाने हमारे वारने लिये। हेतवात्सल्य और कुटुम्ब भावनाके मधुर और सुकुमार प्रकाश मानो हमारे भावोंको प्रकाशित ही न कर रहे हो इस प्रकार उसके हास्यके अमृत प्रकाश हम पर प्रकाशित होने लगे।

प्रकरण ५ वां.

वटमालिका यूथमें



विश्वको अश्वत्थ कहा है, परतु वड कहा होता तो रूपक क्या विशेष शोभा न पाता और क्या विशेष सत्य-प्रकाशक न होता ?

नगरके किनारे बडकी पञ्चवटी थी और उस पञ्चवटी में मीठेजलकी पातालतल-गहरी वापिका थी। नगरकी सन्नारिया उसका जल भर लेजाती थीं और नगरके जनोंको पिलाती थीं।

सुबह-सुबहके समय पञ्चवटीके जल-कूपपर तिरिया-राज्य जमता था, सुन्दरियोंकी प्रतिनिधिसभा भरती थी और नगरचर्चा होती थी। जल, जलके बेवडे (दोहरा कुम्भ) जलभरकर जेघड लेनेवाली पनिहारियोंके विश्वरगी वस्त्र और ब्रह्मरगी मुख, पञ्चवटी का घेरा और घेरमें हिलते-चमकते सघनघन रहे पत्रगुच्छ इन सब पर जब प्रभातका बालसूर्य प्रकाशित होता तब इन सबोंके अन्तर्भाव प्रभातके प्रकाशके समान लिखते-प्रकट होते थे।

इस पञ्चवटी की सायामें नगरकी कुमारमडली मिलती थी। कुमार वटकी अट्टालिकाओंमें बैठते और वशी बजाते थे। कोई रामचन्द्रजी के समान सोहते थे तो कुछ लक्ष्मणजीके ऐसे विराजमान होते थे। अगद हनुमानजी, सुग्रीव जाम्बुवान —पपाके ऐसी वापिकाके तीर पर सुमेरुके ऐसे वटके शिरपर रामसेनाकी ऐसी-वीरसेनामी वहा पर मिलती थीं। सायकाल के किरण बडकी जालिया में प्रकाश पिरो रहे थे और तेजके

मुकुट और हार कुमार यौवन को पिन्हा रहे थे। उस समय पचवटी की अटारिया रसिकों की रसज्योति से झिलमिला रही थीं।

वह एक यमका समय था और वह मुझे याद है। चन्द्रिका के मन्दिर पर उषा पधारी थी उसके कितने ही दिवसोंके बाद उस गहरी सांझकी परछांई फैली थी।

मै भी उस दिन मदोन्मत्त था परन्तु वह तो कुम्भस्थलों में से मद-बिन्दु झरते हुए ही घरगया।

उस दिन चन्द्रिकाके मन्दिरमें हमारे आन्तरिक अवरोधके परदे उठ गये थे। इसके बाद उषाके देहकी बहार कुछ निराली ही खिल उठी। हिमालयके हिम पिघलने पर नाड़ियों में रुधिरकी भरती उभरने लगी। उषा की बेलके पान पानपर मानों कलिया लगी हों, उषा की बिजलीके अवयव अवयव पर मानों दीपक जगमगाने लगे हों। प्रियतमके प्रथम स्पर्शके बाद प्रियतमाका जो रसविकास होता है वही विकास उषाके स्थूल और सूक्ष्म ब्रह्माण्डमें होने लगा मानों केसर और कुकुमसे लिखा हुआ मेरा सौभाग्य ग्रन्थ ही न खुल रहा हो।

अचानक वसन्त विश्वमें प्रकट हो, तरुलता कुसुमित होकर सौरभ देने लगे, कुछ ऐसाही उषाके देहविश्वमें हुआ।

लोक हितचिन्तक जननायककी सूक्ष्म दृष्टिने कुमारिकाओंके उद्यानको देख लिया,उन्होंने अपने खास हाथसे लिखा हुआ एक कृपापत्र मेरे पिताजीको भेजा और नगर सभासे आज्ञापत्र दिलवाया कि इनामका खर्च नगर-भण्डारसे दिया जाया करेगा। इसके बाद उषाकी शालामें जाना मैंने बहुत कुछ कम कर दिया। ब्राह्मण-भावनावाले शारदा मन्दिरके उस नवीन आचार्यकी भी प्रतिष्ठा उड़ती खबरोंमें खूब जमी थी अतएव मैंने अपना कर्तव्य भार उतरा हुआ माना। हमारे प्रजा-प्रमुख कहते थे कि

समाजके नेताओंको तो श्रीकृष्णचन्द्रकी तरह सारथी धर्म पालना है, लगाम पर हाथ रखना है, दिशासूचन या गति प्रेरणा करना है बाकी कार्यकारी अश्वोंको तो अपने बलसेही दौडने देना चाहिये।

इसके बाद उषा चन्द्रिकाके मन्दिरमें उत्सव–उत्सवपर आती थी और आती तभी खिल खिलाकर हँसती थी । मनुष्य ऐसा मानते है कि हृदय छुपा हुआ है वैसेही हृदयके भाव भी छुपे रहते है। परन्तु उषा कहती कि प्रियतमाके लिये तो प्रियतमके हृदयको पढलेना ऐसा साफ है कि जैसा साफ खुले हुए ग्रन्थको पढलेना भी नहीं है। उषाके मुखकी पाटीपर उषाकी अतरूर्मियोंकी अक्षरमालाको मै भी अनायासही पढलेता था।

हमें वे अखिया मिल गई थीं कि जो बे-लिखे अक्षरमत्र पढलेती है, हृदयके ताम्रपत्रोंको उकेल लेती है।

अब मुझे यह समझ पडा कि मेरे कमरेमें जो प्रकाश और सौन्दर्य प्रकट हुए थे वह उषाके रसमय पदसचारसे प्रकट हुए थे। चन्द्रिकाने मुझे सिखाया था कि पियानोकी कल सहजमें कैसे बजाई जाती है। मैंने दोनोंको शास्त्रीय पद्धतिसे सिद्धकर बतलाया कि महामायाकी पुत्रियोंकी शिक्षाका महा प्रश्न उन दोनोंकी अपेक्षाही कम प्रिय था। मेरी समर्थ दलीलोंको सुनकर वे मुसकरातीं और मेरी गभीर मुखमुद्रा निरख निरखकर हँसती थीं। मै समझता था–परन्तु बार बार भूल जाता था। वही चन्द्रिकाने मुझे दूसरे दिन समझाया कि दो कुमारिकायें कुमारको क्यों हँसती थीं। कुमारका परमार्थभाव परमार्थ फलदाई था, परन्तु एक कुमारिकाकी ओरकी स्वार्थ भावनामेंसे जनमा था। जगत ठगा जाता है और बार बार स्वार्थको परमार्थ कहता है। मैं ठगा न गया था परन्तु भूल गया था। परन्तु गगा-यमुनाके ऐसे, निष्पाप और विशुद्ध स्वार्थ-परमार्थके निर्मल भूल क्या एक देवगिरिमें नहीं विराज रहे?

जब जब मिलते तब तब हमकर सम्पुटकी किलगी करते और कर-वल्लीके हार गूँथ कर आपसमें एक दूसरेका सत्कार करते थे । अगस्त्य महर्षिकी छोटीसी अजलि में आये हुए महासागरके किनारेपर खडा हुआ जलधि–जल–मुग्ध कोई जैसे जलकी ओर ही देखाकरे और विपुल जल वाली तरगमालाके ऊँडे ऊँडे भेदभवरोंकी गहन भूमिकाको निरखा करे वैसे ही हम एक दूसरे के नन्हे नन्हे नयनोंमें आये हुए महासागरके जल भेदकी भूल भुलैया में कुछ खोजते हुए भी जल मुग्ध हो खडे रहते थे । अंतमें उषा हस पडती थी और कमलकलिकाओंकीसी अँगुलियोंमें मेरी ठोडीको लेकर कहती थी कि दीवाना, दीवाना, मेरा सदाका दीवाना !

मै कहता था कि दिवाने को भी स्याना बनाना, उषा । पछिनी सी इस तरह उषा आती और मेरे करकी टहनियोंपर झूलती गाती और पीछी उड जाती थी । मेरी टहनी टहनीपर नये अङ्कुर निकले और नये पान प्रकट हुए ।

सौन्दर्य पारसमणि होता है जो उसे छूता है उसे भी सुन्दर बनाता है ।

इसके बाद नगरके मार्गमें चलती हुई उषा ऐसी जान पडती थी कि घुघर मालका झनकार करती हुई धेनुपुत्री ही न जारही हो ! नर नारि-योंका मारालोक परिवार उसे मार्ग देता था । एक मैं मिलता तब वह गर्दन झुकाती और गलेकी घूँघरमाल जिस तरह कारण न करे उसतरह का कुछ कुछ रणकार करती थी ।

इसके बाद उषाकी माताने पुत्रीकी पढाई पूर्ण होजाने की मिठाई बाटी और पाठशालामें चढा हुआ नव यौवनाका उफान देव मन्दिरमें शान्त होगा ऐसा सोच कर वह उषा को अपने साथ देव मन्दिरको लेजाने लगी । मै भी देव दर्शनके लिये देव मन्दिरको जाने लगा ।

मेरी माता ने समझा कि पिताकी तरह ही पुत्र भी धर्मात्मा होगा। एक पर्वके उत्सव पर उत्सवके वस्त्र पहने हुए उषा चन्द्रिकाके मन्दिरमें आई थी तब मैंने उसे सत्य बात कहदी। उषा क्या मन्दिरके सब सिंहासनों पर देवी ही विराजमान हैं ? मुझे तो देवोंके मुख परभी देवीके ही दर्शन होते है।

कुछ पूछा कि उषा हँसी। वह हँसती–हँसती उठी और मेरे बालोंमें अगुलिया डाल कर पपालने लगी मानो स्यानपका स्नेह ही न सींच रही हो!

उषाने कहा, अन्तरमें वही आँखमें।

चन्द्रीने कहाः तू देव दर्शन को जाता है या उषा दर्शनको ? कहने दे मासे।

मै ने कहा। कहना भले ही। मा तुझे कह रहीथी वह भी मैंने सुना है। 'चन्द्रीसी कन्या है और उषा सी बहू हो तो मै तो अपना ससार तिरकर कृतकृत्य होऊँ।'

उषाने चन्द्रिकाको कहा इन्हें तो भींतोंको भेदकर सुनना आता है और मुंदी हुई पलकों कोभी वेंधकर निरखना।'

चन्द्रीने उत्तर दिया' तेरे देहकी सुवर्ण मजूपाके आत्माको जो उकेल सकता है उसे क्या क्या न आवेगा।

मैंने कहा किसने इस आत्माको नहीं उकेला और किसे क्या नहीं आता ? तुम्ह कहाँ कुछ कम हो ?

तेजोवृन्द से पल्लेको उड़ाती हुई उषा आई। मै मुसकराते मुसकराते आदर देने को उठा। उषाने मेरे दोनों कानों की दोनों लोलें पकड़ीं और दबादीं। मैंने गुलाब कलिकाके ऐसी उसकी नासिका को छुआ और मलदिया।

चन्द्रिका खिलखिला कर हँस पडी और बोली" खूब जोडी मिली है भाई-भोजाई की। कोई किसीसे उतर कर नहीं हैं ! एकने एक के कान बींधे तो एकने एक का नाक नाथा।

चन्द्रिका उषाको भाभी कहती सो उषाको बहुत ही पसन्द था। इस तरह रसवार्ता की कितनी ही तिथियोंके बीत जाने पर वह साझ आई थी। रस पीपीकर मै भी रसोन्मत्त हुआ था। वह तो सर्प ही था' ऊपर से सुन्दर परन्तु भीतर जहर भराथा।

उसदिन हमारा ' छुआपाती पीपली, का खेल था। बसत में जैसे बनका यौवन उभरता है वैसे ही नगर का यौवन पचवटी में उभरा करता था।

राजमहल की गजशालाका मुकना—हाथी मदोन्मत्त होकर जैसे झूमता झूमता चले वैसे ही उस श्यामको मै भी चलता था। मुझे उषाने नयनोंके प्याले भरभर कर मधुपान करायाथा और मुझे उसका विकट नशा चढा था।

सूर्य ढलगया था, परन्तु लाल रग बरसाते हुए कुछ ऐसा जान पडताथा कि कुछ कुद्धसा न हो गया हो ! सब कुमार बसीधर बनकर आयेथे'बंसीनाद से मानो ब्रह्माण्ड को ही जीतनेको न तैयार हुए हों!

वह एक था जो कुमारपरिमण्डलमें रावणके ऐसा जान पडता था। नागके खुले हुए फणके ऐसा उसका मुख-फण था। मदलोललोचन की पाखोंके ऐसे उसके पलक उड रहे थे । उसकी निगाहमें जहरीले तीरथे। उसके कटाक्ष-पूर्णस्मित मे विषैले कटार थे। उसकी सळ पडी हुई भवें कौचफलीके कामलेंकी सी थीं। उसके शब्दोंके रणकारमें विषयवासना और कामलोलुपता थीं । स्वयवरमें रावणके आने की भांति सज्जनोंमें वह दुर्जन आया था। उसके गाल परकी वज्रमुक्की और ललाटपत्र परका कालाचांद जीते जी—कभी न भूला जायगा।

मूर्तिमान पुरुषार्थके ऐसा नरपुगव योवन भरा कुमार सघ इकट्ठा हुआ था। इसमें वही एक मदोन्मत्त साढ था। उसकी आँखें ही फूल गई थीं।

खेल जमा। दरख्तकी शाखा शाखापर पत्तोंके जाली झरोखोंमें शुकोंके समान कुमार चढ बैठे। शाखाओंके झूलोंपर कुमार झूल रहे थे। दाव वाला छूनेको आया कि तॉतोंकी साकलें पकड पकडकर कुमार नीचे उतर जाते और दूसरे बडपर जा चढते थे।

पचवटीके पत्तेभी खड खड करते हँसते थे मानो कौमारकी हवा उसेभी न लग गई हो!

दाववाला मुझे पकडनेको आया। मै आगे और वह पीछे, इस तरह हम बडकी चोटी पर चढे। एक ताल भरका अन्तर रह गया था और मै पकडाही जाता। इतनेमेंही दूसरे बडकी एक प्रचड शाखा इस बडकी शाखाओंमें गुथी हुई देख पडी। सब शाखाओंको मैंने हिला देखा और इस वृक्षसेतुपर पैर रक्खा। कौमार वृन्द देखने लगा कि यह क्या करता है। मै उस सेतुपर खडा था और शिर-परकी एक शाखको पकडे हुए था। खेल खेलने वाले कुमारोंने बसिया छेडीं और कहा, कालीनागके फनपर मानो श्रीकृष्णचन्द्र हैं!

सर्पने आखें नचाते हुए कहा परन्तु गोपराजों की गोपिकायें कहा है?

सर्पका ध्यान बातो में था। इतनेमें ही दाव वालेने हूँ कर कुदकी लगाई, मानों हनुमान जीने सागर उलाघा! सर्प की शाखापर उतरकर सर्पको छूलिया और अपना दाव सर्पपर डाल दिया।

सर्पने कहा, आ मेरी गोपी!

सटाक करता हुआ चाबुकका सटाका पडे इस तरह दाव वालेके हाथके तमाचे का फटाका पडा और सर्प बड परसे नीचे धूलमें लुढ़क

पडा। मजाकी सब-के-सब कह कहा लगाकर बोल उठे. देखो भैया देखो! लम्बा चौडा रुई का बोरा लुडक गया! फॅस तो न गया?

सच मुच वह सर्प ही था। हृदयकी विशालता से हीन वह सिरोके सोटेके ऐसा चौडाई हीन केवल लम्बाई ही था। काम सूत्रमें की त्रिभगी रस मूर्तियों का अनुकरण करके वह अगमें तीन बल डाला करताथा। उसकी पुतीलयों में मोहपराधीनता के जादूई मंत्र चकचकाते थे। उलकी त्वचा तेजस्वी थी परन्तु उसके भीतर जहर भरा था। विषकी जगह अमृत होता तो उसका रूप देवके ऐसा दीख पड़ता।

फिर खेल प्रारम्भ हुआ। कुमारोंने बसिया वजाई और कोयलें बुलाई। पचवटीकी वटघटाकी पत्ती पत्तीसे टकराता हुआ बसीका कोकिल-राग वटघटाकी सघनतामें छागया।

रावण रामकोही खोजता था इसी तरह वह (सर्प) मुझेही खोज रहा था। एक शाखासे दूसरी शाखापर और, एक पानके झरोखेसे दूसरे पानके झरोखेपर, घटाकी गहराईमें हम घूम रये थे। दूसरे उस पर पत्ते डालते, टेंटोंकी गोलिया मारते, ललचाते, खिजाते, चिडाते, तकलीफ पहुँचाते, परन्तु नहीं। सर्प तो इसवक्त एकटक हो रहा था। अनेक शिख होकर उडनेवाले किरणके ऐसे उसके नयन इस समय एक ज्योति हो रहे थे। मुझे ध्यान आया कि इतनी एकाग्रताका योग्यबल सन्मार्गकी ओर लगाये तो शैतान न रहकर यह फरिश्ता न हो जाय?

वटकी घटमालामें दोडते-कूदते एक छोटे खावडेकी ऐसी खाई आई। व्यायामशाला मुझे स्मरण हो आई। मैने व्यायामका प्रयोग किया। एक शाखापर बैठकर कूदा, दूसरी शाखाको जा पकड़ी। उसपर अगको झुलाया और अगली शाखामें पैरोंकी बेडी जा डाली। इस तरह मैं

उस खाईको पार कर गया और दूसरे किनारे दूर परे निश्चिन्त होकर बैठ गया ।

मानवजातिके बापदादे और बडे बूढे पुच्छविलासी कपिवंशके थे इसकी साख त्रेतायुगकी रामायण दे रही है, और कलियुगकी नई साख हम दे रहे थे । तो भी कितने ही लोग पूर्व कथा के सबूत मागते है ।

फन-सी नाकको फुलाता और श्वासोच्छ्वास को उछालता हुआ-हांपता हुआ नाग खाई के पास आया और रुक गया । खाई की चौडाई को ताका और पातालतककी उसकी गहराई निगाह की डोरी से नापी। पचवटी को जीतना हो इस तरह उसने धोती का कच्छ मारा । खाई की पालकी शाखापर बैठा । ऊपर नीचे, आस-पास, वटघटाकी खिड-कियोंमें कुमारवृन्द दूर दूर खडा था और पत्र घूंघट की जाली में से उसके नयन देख रहे थे ।

वटके टीटे की एक हरी २ गोली अचानक आई और भँवरीके ऐसी उसकी नाकपर डक मार गई । कतराई हुई दृष्टि-कटारी सर्पने ऊपर फैकी और चारों ओर घटाघेरेमें कुमार हँस पडे मानो हास्यके महावायुकी लहर ही न फैल गई हो ।

उसकी मवोंपर की रक्तरज्जू रुधिर भरने से फूलीं और उसके लोचन-में लोहूकी लालिमा छागई । सर्प ने सोचा कि खाई नहीं कूदी जाती इससे सब हस रहे हैं । उसके हृदय में हास्यके भी डक लगे ।

जोश और उत्साहमें जो बात होजाती है वह उनके शात होजाने पर नहीं सिद्ध होतीं । चिन्तन और विचारणाके कितनी ही बार भार पडजाते है और इससे जो तीर लक्ष्यवेध करते वेही लक्ष्यसे नीचे पैरोंमें गिरजाते हैं । हास्यके डक लगने से सर्पको खिन्नता हुई और इससे उसकी आत्माके चापकी पिणछ ढीली पडगई ।

सर्प से लक्ष्यवेध नहीं हुआ । डुबकी लगाता हो इस तरह लम्बे हाथ कर

कूदा परन्तु चूक गया। साम्हे की शाखा को अगुलियोंसे छुआ, कुछ देर हवा में रुका और फिर शिलाके ऐसा पड गया! मानो स्वर्ग से शैतान न गिर गया हो!

पाप में पुण्यके ऐसा ही बल है परन्तु पुण्यके बाण लक्ष्यवेधी होते है और पापके तीर लक्ष्यवेधी नहीं होते। पापके तीर छुये–न छुये–होते है। पापके तीर भी आत्मभेदी होते तो आज जगत आत्महीनही होता। शैतानसे प्रभु जितना बडा है उतने ही बडे पापसे पुण्य हैं।

खेल पूरा हुआ। जेबकी कोयलों के ऐसी बंसिया सबने छेडीं। पुरुषर्षभके ऐसी यौवन और पुरुषार्थ की बलमूर्तिया खड़ी थीं। एक ने कहा मेरी बंसी मे कोई बोल रहा है॥ दूसरेने कहा मेरी बसी में कोई ठहर जाता है। तीसरे ने कहा मेरी बसी में उषाके गीत छेडता हूँ तो बसी बोलती ही नहीं–मधुर गान गाये ही नहीं जाते।

पीपलके पानकी तरह सर्पके और मेरे कान फरके। सर्प ने कहा राधा कोतो कृष्णबसी ही नोता देती हे। तेरी बसी तो बेसुरी है। जतर बजे और हरिणी आवे इस तरह, देख! इस बसी की बुलाई उषा आवेगी।

अगका त्रिभग कर उसने बंसीको अधर पर रक्खा। क्या मधुर उसका बोल था! बुल बुलसेभी धीमा, कोयलसेभी मीठी मानो विलासके शीत्कारशब्दही न हो! पचवटीके पान-पानपर उसकी धुन छाने लगी।

परन्तु यह कौन? वही है यह। सबके नयन उधरही लगे हुए थे, नगरके बाहर कुजमें शिवालय था। वहापर कुमारिकाओंके निज परिवारको लेकर साध्वी अध्यापिका दर्शनको जाती थी, मानो सौन्दर्यकी हरिणियोंका सघ ही न जारहा हो। सरिताओंकी लहरियोंके ऐसी उनकी पटलिया धीमे धीमे उछल रही थीं। जगतारण छोटी–छोटी नैयाओंके ऐसी पल्लेके बर्द्दवानको फहराती हुई श्यामाये बह रही थीं,। परन्तु कौमार-

संघके अग्रभागमें कौन था ? यही थी वह, सौन्दर्य सेनाकी स्वामिनी। जगतको जीतनेके लिये कामदेवकी सेनाकी टुकडी निकली हो और उसकी अधिष्ठात्री रतिरानी विजयपताका लिये आगे होले, इसी भाति युवतियोंकी अधिष्ठात्री उषा चल रही थी। पुष्प-धन्वाके धनुषके ऐसी पुष्पमालाकी बेल उसके ललाट देशपर लटक रही थी। सिर सँवारा न था परन्तु खुली हुई वेणी की अलक–लट नागिनके ऐसी बल खाये हुए थी। सायकालमें सुनहली बदलियोंका सघ–परिवार जैसे आवे और चला जाय वैसे ही वे कुमारियाँ आईं और पधार गईं'। कुमार–हृदयों पर अलग अलग दश लगे और अलग अलग नशा हुआ। सर्प को उस अलकलट की नागन का जहर चढा और मुझे ? पुष्पलताकी पत्तियें का मद चढा।

उस सर्पने कहा बन्दा झूठा पड नहीं सकता। कैसे न आवे ? विहङ्गिनी-सी नगरकी घटाओं में उडती है वह कैसे उडती हुई न आवे ?

मेरी नाडिया टूटू–टूटू होने लगीं। मेरा श्वास गरम गरम निकलने लगा। मेरी भुजाओंमें' वेग से खून उछलने लगा और मुझे जान पडने लगा कि मेरी भवें तनी जाती है।

सर्प की वाग्धारा अविच्छिन्न बह रही थी। रस और विलास की जगह वह विषय की विषवाणी वरसा रहा था।

कैसे न आवे ? बसी में फिर बुलाऊ तो मेरी हथेलीपर मैना की तरह उछलती हुई आ बैठे और गाती-गाती दाना चुगे। छूमतर मारूं तो सीने से—

उसके छूमतर फले और फटाकसे उसके दहने गालपर एक हथोडा पडा। वह मेरा मुक्का था।

सारा कौमार मण्डल चौंका। मेरी भवोंपर गुस्सा और नेत्रोंमें कोप-ज्वाला कभी किसीने देखे न थे इससे सब आश्चर्यचकित हो एक टक

हो रहे। चारों ओर घेरा घालकर कुमार खडेथे, बीचोंबीच मैं और सर्प दोनों थे।

विलासको इकठा कर रहा हो इस तरह बंसीके टुकडे करके उसने जेबमें रखली और छोटीसी गदाके ऐसी मुक्की लेकर साम्हने आया, बाँए हाथकी मेरी ढालथी और दाहिने हाथका विश्वकर्माके हथोडे-सा हथोडा था। उसके गदा प्रहारको अपनी ढालपर रोककर मैंने उसके ललाटके ठीक बीचोंबीच वज्र हथोडा जमाया कि, उसके भालमें काला चाँद हो गया और नाकमेंसे लोहूकी धारा चलगई।

कुमारोंने हम दोनोंको घेर लिया, कितनेही उसे एक ओर ले गये और उपचार करने लगे, और कितनों हीने मुझे रोका। मेरे बिखरे हुए बालोंको सवारते-सवारते एकने कहा"-कि यह तो ब्राम्हण न रहकर रावण हुआ है। सौन्दर्यकी सात्विक पूजा होती है या अघोर पन्थी?

मेरी पुतलियोंमें से आवेशक भाले छूट रहेथे उषाका कसूमा मुझे चढा था और ऐसा जान पडता था कि इस कसूमे के मैंने केसरिया बाने ही न धार लिये हों।

कुमार मण्डल बिखर रहा था सायकालको गोप मण्डल आवे और नगरके दरवाजेमें पँहुचकर अलग अलग हो जाय वैसे ही कुमार बिखर रहे थे जाते-जाते एकने कहा मासके भूखे राक्षस होतेहैं और भावके भूखे देव।

दिवस अस्त हुआ और सायकालकी शीतलता फैली तब कहीं मेरे मदका उभराभी उतरा।

मुझे वह यमका समय आजभी याद है!

नशेबाज नहो उसे भी विश्वके चौकमें कभी कभी इसतरह का नशा चढता है, प्रियाके प्रेमकी रस-मुग्धताका उभरा इस तरह उछल पडता है।

प्रकरण ६ ठा.

जन्माष्टमी



मथुरामें परमात्मतत्त्व महोदधिका देहदेशमें जिस समय कृष्णावतार हुआथा उसी योग समय में हमारे आत्मभावका भी देहभूमि में स्नेहावतार हुआ ।

जन्माष्टमी की आधी रात थी। चन्द्रमाकी नैया क्षितिज पर तैरती हुई आई थी । कृष्णमन्दिरकी पुष्पवाटिकामें देवसुन्दरी सी उषाने और मैने, परस्परमें प्रथम प्रेमचुम्बन लिये

मडपकी लताओंके मूल भिन्न होने पर भी हरियाली और कुसुमराशि आपस में गुथ जाती है वैसे ही हमारे शरीरके द्वैत होने पर भी जीवनके पत्रपुष्प उस समय ग्रथित होगये थे । जगतके काव्यमें राधाकृष्ण की रसीली जोडी कितनी ही रीतिसे अनुपम और अद्वितीय है । राधाकृष्णके कवित्व-मदिरमेंही हमारा भी स्नेहावतरण हुआ और रसभावकी कविता रचाई ।

त्रेता में सीताराम और द्वापर में राधाकृष्ण हुए थे, और ऐसा जान पड़ता था कि कलिमें उषा और मै ही न हुए हो। वाचक, मुझे मूर्ख मान कर तू स्वय मूर्ख न बनना तुझे क्या ऐसा न मालूम हुआ था ? जयदेव को तो ऐसाही जान पडा था और उसने पद्मावती की रसलीला राधाजीके नामसे गीतगोविन्दमें गाई है ।

युग युग पहले श्रवणने पितृभक्ति कर नक्षत्र पद पाया था, उसी श्रवण नक्षत्रके भक्तिभावसे भरा हुआ महीना आया और ससारमें

पुनर्जन्म के प्रोत्साहन की ऋतु बैठी। मन्दिर–मन्दिर पर मेले होने लगे और लोकसमकी जली-बली हुई वृत्तियां फिर अंकुरती और अङ्कुराई हुई पनपती भी जान पड़ने लगीं।

वह नवीनजन्मका–सजीवनी मास था। ग्रीष्मकी ज्वाला को शान्त कर असाढ बरस गया था। वन की ग्रीष्मदग्ध वनस्पतिया नवजीवन पा रही थीं। सूखोंमें रससेचन हो रहा था। रसवालों में शाखायें फूट रही थीं। मेरी आयुष्यभर में न उगे थे वे अङ्कुर उरमें और देहमें उगा कर आषाढ बरस गया था।

इस सारे आषाढमें उषाने और मैंने मेघदूत पढा और आषाढीभावकी नववर्षकी कविता जीवनमें छलकती हुई भर ली।

आषाढस्य प्रथमदिवसे वाचक! प्रथम मेघदर्शन होनेपर तेरे भी हृदयके महासागर में क्या तूफान नहीं उठे थे? और प्रियजन के पास प्रेमदूत तूने नहीं भेजा था? काव्यों में कविजन स्वानुभव में सर्वानुभव के ही गान गाते है।

वृक्ष वृक्ष पर पल्लव प्रकट हुए और हरियाली हँस रही थी भीतर से अनदीखी कोकिला कूकी। मेरे अन्तरकी लता पल्लवित हुई थी और भीतरसे पल्लवनिवासिनी कोकिला कूक रहीथी 'कुहू–कुहू–कुहू'।

मन्दिर मन्दिरमें मुझे उषाके दर्शन होते थे। श्रावण की भरी हुई बदलिया जैसी रसकी फूइया बरसाती है वैसीही अमृतकी फूइया उषा मुझपर बरसा जाती थी।

सर्वदेवनमस्कारः केशवं प्रति गच्छति गानेवाली त्रिकालवन्द्य आर्यकुलकी महाप्रजा धर्ममार्गमें विपुल उदारतावाली है। एक प्रभुकी अनेक कलाओंके स्तुतिगानोद्गाता वेदानुयायी देशमें सब देवोत्सवोंके अवसरपर लगभग सब सम्प्रदायोंके अनुयायी उत्सव मनानेवाले बनजाते हैं। एकही परब्रह्मके अनेक अवतारोंको माननेवाला लोकसमु-

दाय विशिष्टरूपसे अनेक सम्प्रदायवाला होने पर भी तत्वत –एकमेवा-द्वितीयम्–का ही चिरकालसे उपासक है । सुबह, दोपहरको और सायकालमें दिन दिन, पहर पहर और घडी घडी–क्षणे क्षणे यन्नवता मुपैति–उस उषाकी अद्भुत रमयणीयताके कलावतार असख्य कलावतार एकही परम सौन्दर्यके कलावतार है । आर्यदेशमें सम्प्रदायोंके द्वीप नहीं है किन्तु एक अखड महासागरके ही सागरोपसागरके खडभेदके ऐसे आर्यधर्मके ये सम्प्रदाय उपसागर हैं । अनेक शाखाओंवाला एकही महाजलविस्तार फैला है । एकही मूलाधारके सृजन-प्राचीन जल–वेदाम्बुनिधिके देवाम्बु–अनेकमहानदके नवनीरसे भरने उभरनेपर, वे सब उपसागरोंमें बहते हैं, भरतखडके सब सम्प्रदाय एकही देहके भिन्न भिन्न अवयव हैं, सबमें एकही जीवनरक्तका प्रवाह घूम रहा है ।

उषा और मै ऐसा ही मानते थे, सब सम्प्रदायी हो एकत्व भावी होते थे और इसीसे सब मन्दिरोंमें देवोंके और परस्परके पुण्यदर्शन करनेको जाया करते थे ।

पहिलीवार मैने उषाको फूलदिया । उसने उसे देवचरण पर चढा दिया । उस समय देवोंकी दिव्यता उषामूर्तिमें क्या प्रकट होरही ? परन्तु विषादके सूक्ष्म बद्लका सूक्ष्म सूक्ष्म प्रतिबिम्ब मेरे मुखपर छाया डालकर उड गया और उषाने उसे देख लिया । सुन्दरीके सुन्दर नयन पुरुष नयनोंकी अपेक्षा सदा सूक्ष्मदर्शी होते है ।

इसके बाद उसने ऐसी भूल न की । मै देता वह लोक देवको नहीं परन्तु वह मेरी स्नेह देवीको चढाया करती थी,

दूसरा मेला कल्याणचापके शिव मन्दिरका था । नगरके बाहर सरोवर की कुजथी और कुंजमें सरोवरके किनारेपर वह मन्दिर था। मन्दिरके घूमसकी सीढीपर फूलोंकी खड्डी लेकर मैं खड़ा था और मन ही-मन गुनगुना रहाथा ' मेहवा ! मेरा तू बीर सरवर पूरों चढारे ।' सीढियोंके

पास मूरतके ऐसा खडा होकर में उषाकी वाट देख रहाथा। मुझे कभी कभी चिन्ता हो आतीथी कि इसीतरह जीवनभर मुझे उषाकी वाट देखना पडेगा।

सरोवरमें जिसतरह तरङ्गें उछल रहीथीं वैसेही उषाकी तरगे मेरे हृदय में उछल रहीथीं।

कुंजमेंसे वह सहेलियोंके सघमे आई मानो पुष्पवाटिका में कोई पुष्पलता ही नहो। पुष्पके समान उसके अंग नृत्य करतेथे पुष्पवाटिकाकी उसकी साडीथी। पह्लोंको पखडिया मान्दिरके समीरमें धीमे धीमे हिल रहीथीं।

कामधेनुकी नन्दिनीके पदोंसे वह देवमान्दिकी सीढियोंपर चढी। मैंने उसे तीन गुलावकमल दिये कल्याणचापके लिये एक और दो गगा व उमाके लिये। उषाने तीनों गुलावकमल स्मितपूर्ण प्रसन्न मुखसे सत्कार पूर्वक लिये, और एक एक फूलोंकी खली मालिनसे भी ली।

आम्रके सरोवरके ऐसे उषाके नयनोंमें जलवल्लीकी ऐसी उषाकी दृष्टि नृत्य करहीथी।

उषा देवमडपमें गई मानो मेरे आत्मा की मूर्तिही सचार न कर रहीहो! मेरे प्रारब्धका भरापूरा थाल लेकर ही न आरही हो इसतरह वह आई और अन्तरमें खाली कर गई—हृदयमेंके हृदयतत्त्वको लियेजा-रही हो इस तरह वह सिधार गई।

मालनके दिये हुए फूल और वीलपत्रोंसे उषाने कल्याणचापका अभिषेक किया मेरे दिये हुए कमलगुलाव! एक वेणीमें गूथा और दो कचुकीके कुम्भोंपर रक्खें। स्थूल और सूक्ष्म—मेरे सारे शरीरमें फव्वारे छूटे और हर्षकी धारा वरस पडी।

उषाकी नयनभ्रुकुटीकें कल्याणचापमेंसे उस पुण्यातिथिको तरगें उठीथीं उसकी भरतिया मेरे जीवनभरमें उभराती चली आरही है। उषाने ऐसे

बाण मारे कि उस बाणकी बाणगंगा—रामसेतुके पास धनुषकोटके साम्हने उछलने वाली गंगासे भी विशेष—महाप्रमत्तगंगा अभीतक मेरे हृदयमें उछल रही है। इसजीवनके झर सूख जायगे तोभी वह न सूखेगी।

श्रावणी पूर्णिमाके दिन लोगोंने प्रायश्चित्त किये, ऋषितर्पण कर पाप जलाये और फिर नये सिरसे पुण्यपापके बहीखाते लिखना शुरू किया। ब्राह्मणोंने शरदरक्षाके आशीर्वाद कह भाविकोंके रक्षा बांधी। सच्चे वर्ककी राखी लेकर चन्द्रिका आई। मै न समझा और हँस पडा और बोला भी कि इस शरदमें मेरी रक्षा हो इसतरहका रहा नहीं जान पडता। चन्द्रिका रूसी, तमकी और राखी फैंक कर चलदी। फेंकी हुई राखी मेरे बालोंमें गुथ गई मानो नक्षत्ररन्ध्रको फोड कर सुवर्णके वृक्ष पर सुवर्ण-फल ही न उगाहो! मैंने पीछे पीछे जा बहनको दक्षिणा देकर मनाई परन्तु न मानी। मैने कहा तेरे हियेके हीरेकी राखी दे ला, मै उसे दे आऊ। वह हँस पडी, रोसके बादल बिखर गये, और बोली देनेको आई तब तो अपने लिये मानली। जगतभी अजब स्वार्थी है? तेरी रक्षा तो यह रही, देख, बांच, भीतर लिखा है उषा। मभी ब्राह्मण बन कर गया, और चन्द्रिकाके बरे हुए वरके शरदरक्षा बांध आया।

स्नेहके स्वयंवर जीतनेके पहले कितने कितने वेश धारने पडते है कैसे कैसे वेश भजने होते हैं! परन्तु सव्यसाची भी ब्राह्मणके वेशमें स्वयंवरको जीता था न।

उस दिनसे हम आपसमें प्रसन्नचित्त रहते है, और दुनियाके दृढ-अकलवाले जिसे कौमारकी भूलें या यौवनकी उच्छ्रिंखलता कहते है उसे हम आत्माके चेतन मानते है।

यौवनकी आखसे यौवनकी परीक्षा होती हो तो कितनेही ज्यादा नापास की जगह क्या पास नहीं? चन्द्रिका और वह, उषा और मैं, हम सबने एक दूसरेको पास कर दिये थे।

आयुर्दा वर्चोदा तेजस्विता बल चौथके दिन मेरे पानीसे दिलने भी बलधारा, और—पत्र पुष्प फल–उषाके चरणोंपर रक्खे। उस साझको उषा पुष्पोंके पदालङ्कार पहन कर सखियोंमें घूम रहीथी। उषा मेरे मुखभाव बाच रही थी, परन्तु मेरे लोचन तो उसकी चरण वन्दना करते हुए पदपुष्पोंमेंही रम रहे थे।

नागपञ्चमीके दिन नगरजन नाग पूजनेको जारहे थे परन्तु मैंने तो नागनकी पूजा की। कोई उठे उससे पहले उठा और कोई बीने उससे पहले पुष्पोद्यानके सर्वोत्तम पुष्प बीन लिये। चन्द्रिकासे कहा कि सर्पकी पुष्पकञ्चुकी गूथ दे। जिस नागनके अमृतदंश मुझे लगे थे उसके अधर-दशकी मुझे इच्छा—लालसा रहतीथी। उस उषा की सखी—नागनके ऐसी वेणीके चढानेके लिये और बिलकी भाति ढक लेनेके लिये वह पुष्पकञ्चुकी मैने भेजी।

लोकोंने भयसे विषपूजा की और मैंने स्नेहसे अमृत पूजा।उषाको जब कभी मै कुछ भेजता तब भीतर एकही शब्द लिखता था, ‘स्नेह’।

एकबार आकाशमें चन्द्र उगा हुआ था। उषाकी उस नागनको चन्द्रि-काने पकड़ रक्खा था और कमलकंठको नमाकर उस चन्द्रमुखीको चन्द्राभिमुखीकर उसे चन्द्रिका पिलाई थी। नीलकठी न कर अमृतकठी की थी और हृदयके आवेशसे चन्द्रामृतका अभिषेक किया था पुष्पपरि-धान भेजते हुए मुझे उस सखीलीलाके स्मरण और साथही अभिलाष हुए।

जो किसीको भोजनकलाकी प्रदर्शिनी भरना हो तो वह श्रावणके कृष्णपक्षकी छठको घरघरकी भोज्य सामग्रीकी चीजें इकठी करे। लोगोंको नित्यभोजन करानेवाली अन्नपूर्णायें उस दिनको भोजनकलाका उत्सव दिन समझती हैं। वर्षाकी सञ्जीवन की हुई सब वनस्पतियोंको लालाकर और उनमें अधूरे रहे हुए स्वादको सब पूर्ण करती है। प्रकृतिकी रक्खी

हुई अपूर्णताको पूर्ण करती है। जैसे नयनेन्द्रियके उत्सव होते हैं वैसेही स्वादेन्द्रियके पर्वका वह दिन है। बच्चोंको घवानेके ऐसीही उमग प्रियाओंको सदाही होती है कि अपने प्रियजनको खाना बनाकर खिलावें और इस उमगका व्रत उस दिन मनाया जाता है। उषाने दो बाने मुझे भी भेजे थे परन्तु वैष्णवोंके छप्पन भोगकी सामग्रीमें भी वे नहीं आते होंगे! तालसुर नवसवाद्से सगीतशास्त्री नवसगीत भजन करते है वैसेही स्वाद्के भिन्नभिन्न रसोंके मिश्रणसे उषाने कुछ नवीनही सृजन किया था, और प्रकृतिकृत्य कर वह सृष्टिकी सहधर्मिणी सखी बनी थी। प्रकृतिके समान स्त्रिया तो सदा सृजन करनेवालीही न हैं?

कितनीही पाककलाकी पुस्तकें बनाती है परन्तु पाक नहीं बना सकती। उषाका हाल उलटाही था। वह विविध पाक पक्वान्न बनाती थी परन्तु पक्वान्न पुस्तकें नहीं। ब्रह्माकी पुत्रीकी भाति उषा नये नये स्वाद उत्पन्न करती थी और लक्ष्मीकी पुत्रीकी तरह उन्हें पोसती थी। स्वादके रसशास्त्रके मानो दो काव्यही रचकर उषाने मुझे भेजे थे। मैंने चखे और उनके रस बहनकोभी चखाये।

नयनको दर्शनसे, श्रवणको गीतसे, रसनाको भोजनसे, त्वचाको स्पर्शसे, घ्राणेन्द्रियको निजसुवासनासे इस तरह पचेंद्रियको पचामृतसे परितृप्त करती हैं उन सुन्दरियोंको सदा धन्य हो! पुरुषवर्ग! कहो धन्य हो! धन्य हो!

सुन्दरी मडल न होता तो निश्चन्द्र और निस्तारक रातके ऐसा जगत अन्धकारमयही होता या नहीं? पाचों ज्ञानेन्द्रियोंके, रसज्ञानसे रसशून्य और अतृप्त रहनेपर आत्मा तृषातुर रहकर सूखता और नवपल्लव भी न लगते। ज्ञानेन्द्रियोंको रसजलसे सींचकर आत्माको परितृप्त करता हुआ सौन्दर्यपरिवार जगतमें चिरजीव रहो!

ऐसा करते-करते वह देवविख्यात जन्माष्टमी आई, जगत के परम

वसीधरकी जन्मतिथि आई। गोकुल, मथुरा या वृन्दावन में भी नहीं मनाया जाता ऐसा वह जन्मोत्सव हमारे रसनगरमें सालोंसाल मनाया जाता है। इस वर्षकी जन्माष्टमीके ऐसी आय जन्माष्टमी एक ही होगी या श्रीकृष्ण के जीवन भर भी जन्माष्टमिया हों—तो—हों।

दशहरे के दिन प्रात कालसे ही अश्व थनगन–थनगन नाचने लगते हे वैसे ही, प्रात कालसे मेरे मनका अश्व आज थन थन। रहा था। चन्द्रोदयके पहले जैसे प्रकाश आसमानपर उडते हैं वैसे कृष्णचन्द्रके जन्मयोग के प्रकाश के फुवारे पहले से ही उड रहे थे और उसके छींटों से मैं भी छींटा जा रहा था।

उस दिन आकाश स्वच्छ था आर वरसात हो नहीं रही थी। आकाशके द्वार खुल गये हों इसतरह बादल बिखर रहे थे। तो भी लोग मानते थे कि बादल बरसेंगे। वृद्ध कहते थे कि कोई जन्माष्टमी बरसे बिना खाली नहीं जाती।

पृथ्वी तृप्तिमें लहरा रही थी। भरे हुए खेतों में गोपी गोप कल्लोल गीत गा रहे थे।

पन्दरह तिथियोंकीसी कृष्णचन्द्रकी पन्दरह जन्माष्टमिया उषा पर बरस चुकी थीं और इस रसवर्षासे उषाके आयुष्यकी एक एक कला का पोषण हुआ था। नास्तिक के ऐसा मै बाईस जन्माष्टमीओंमें उसके बाईस अवतार हुए थे परन्तु व्यर्थ । ये सब जन्माष्टमिया हमारे हुई थीं या नहीं परन्तु यह जन्माष्टमी तो हमारे जीवन की जन्माष्टमी थी। इसी तिथिको हमारे अन्तराकाश में पृथ्वी के प्रकाश प्रकट हुए।

किसी महाप्रसगके अनुकूल देव मुहूर्तका तिथियोग विश्व में जमे ऐसा कुछ लोक लोचनसे न देख पड़ता था परन्तु वाताऽऽवरण में प्रतिबिम्ब से उडते हुए जान पडते थे। सूर्यपर चन्द्रकी छाया पडती है। उस

ग्रहण के दिन दो पहरके समय आसमान जैसे देवदूतों के बिम्ब उडत हैं वैसे ही बिम्ब उस दो पहरीकी धूप में उड रहे थे। दो पहरी के तेज-सरोवर में तेजजलकी ऊर्मियां उठल रहीं थीं और स्त्रीपुरुषोंके हृदयकी नौकायें उस रसपूर में उठल रही थीं। जमनाके जल हिलें उस तरह मरे हुए आत्माके जल जनकुल में हिल रहेथे।

अन्तरिक्ष में से जो कुछ उतरे उसे झेलनेके लिये अन्तरकी घाटिया उसदकर पट फैला हुआ था। बुद्ध को बोधीसत्व उतरे वैसे हमारे जीवनसत्व उस तिथि को उतरे।

प्रिय और पूज्य तिथिके आनेके पहले जैसे गृहागण बुहार झाडकर साफ किया जाय वैसेही स्वच्छ किया हुआ मुझे अपने अन्तरका चौक और जगत जान पडता था। आदरके स्वस्तिक उसमें बनाये गये थे।
मुमुक्षुओंको ब्रह्मजन्मकी तिथि होती है वैसेही वह हमारे जीवन-जन्मकी तिथि थी।

प्रातःकालमें श्रीमद्भागवतमें की जन्मस्तुति गाता हुआ मै उठा। चन्द्रिका गोपीगीत गा रही थी। माताजी मगलाके दर्शन करके आये थे। चन्द्रिकाके झरोकेके नीचेसे प्रातःकालिक कोकिलकीसी बसी बोलती बोलती चली गई।

दातुन करते हुए चन्द्रिकासे मैने कहा' मैने सुना है हो! वह कोकिला न थी। चन्द्रिकाने कहा' नहीं, वह कोकिला न थी, कोकिल था—तेरी राधारानी न थी, मेरा कृष्णचन्द्र था। क्या भाईको राधाजी की लगन!

उस सारे दिन मुझे उषा की धुन रही। प्रभातमें पनघटपर उषाको हेराढूढा, वह वहाँ न थी। नगरके चौक उसके बिना सूने थे। कन्या पाठशालामें आज छुट्टी थी और सीखनेके लिये नहीं परन्तु सिखानेके मिससे भी आज वहां उषाका आगमन नहीं था। उषाकी हवेलीके घर-

बार खिड़की दरवाजे सब निर्जन थे। यह आख अभीतक अटारीके नहा लगी थी जो जगतको प्रकाशित करनेवाली थी।

उस कृष्णजन्माष्टमीके दिन मैने उपवास किया था। भगवानके परम भक्त सदाके उपवासीही होते है। उन्हें भक्तिके भोजनसे तृप्ति हो यह अशक्य है। वे तो ऐसेही उचारते हैं कि—तृप्तिर्हि नास्ति मेऽमृतम्—मुझे जान पड़ता है कि इसीसे उषाके अमृतकी मुझे आजतक—अबभी तृप्ति नहीं है।

प्रियतमाके सयोग और वियोग दोनों प्रियतमको अतृप्तही रखते हैं। एकमें अमृतका आचमन या अजलि पीनेको मिलती है तो दूसरेमें अमृतसरोवरके केवल दर्शनही होते है या वे भी नहीं होते। परन्तु प्रियतमाके अमृतसे तृप्त हुआ प्रियतम न तो आजतक देखही पडा और न सुननेमेंही आया। मै अपनी उषाका जीवनभरका प्यासाही हू। वाचक! और मुझे तो यहभी खातरी है कि तूभी अपनी उषासे तृप्त नहीं हो चुका; अच्छा तूही बता कि क्या मै गलत कह रहा हू!

उस दिन मुझे अपने स्थान मथुराके जैलके समान जान पडे। प्रारब्धका कंस खड्ग लिये हुए खडाथा और उसकी छाया मेरे जीवनका वेध कर रही थी। उषासूनी दिशायें राधासूनी कुजगलीसी भासती थी। मुझे शून्यके स्वप्न आरहेथे। नगरके वैष्णवोंमें उत्सवका ज्वार चढ़रहथा परन्तु मेरे उरमें उषाका भाटा आरहा था। मेरी वैष्णवी वृत्ति संकुचित होगई थी।

कृष्णजन्मके समय प्रकृति जिस प्रेमसे विव्हल उत्कंठित और आतुर हुई खडी थी, उसी उत्कठा और आतुरताकी विव्हलता मेरे अन्तरको विलोये डालती थी। मुझे प्रसववेदनाकीसी वेदना हो रहीथी, मानो मेरे देहदेशमें उषाका अवतार होनेकोही न हो!

रात पडी और भाविकभक्तोंकी भावनायें रात्रिविकासी कमल कुमुद की भाति प्रफुल्लित हुई। परन्तु मेरी भावलताके पुष्प न खिले।

मेरी आँखें विव्हल होकर किसी एकको खोज रहीं थीं कि जो आज मिलती नथी।

अन्धकारकी भारी भारी झाडियोंकी गहरी घटायें जगतको दबातीं हुई क्षितिजपर झुकी हुई थीं और भीतर अग्निजीवके ऐसे तारे झलमला रहेथे। आँखोंपर पलकें गिरती है इसतरह रातका अंधेर पिठोडा नगरपर पडगया था।

कोई कहते हैं कि सृजनके पहले अन्धकार उडताथा और उस अन्धकारके उदरमें विश्वगर्भ विराजमान था। जन्माष्टमीकी अंधेरी रात भी काली साडीके घेरेकीसी जान पडती थी और भीतर सुन्दरीके सुन्दर देहकीसी सृष्टि–सुन्दरी शोभा देती थी।

नगरके राजमार्ग सचेत हुए। धीरेधीरे दर्शनाभिलाषियोंकी जलबिन्दुकी धार बनीं, धाराओंके निर्झर हुए, निर्झरके प्रपात हुए और प्रपातोंकी भी थोडे समयमें खलखलाट करती हुई सरितायें हो गईं। देव मन्दिरके मार्ग चेतनसे उभर रहेथे। उनके पैरोंके आसपास और ऊपर तिमिरकी सीढिया लगी हुई थीं परन्तु उस तमिस्राको धोनेके लिये ही प्रभुका अवतार होनेको था।

मेरे हृदयकी तमिस्राको उषा धोवेगी या क्या? इस प्रश्नको पूछते–पूछते जिज्ञासु–अवस्थामें ही मैं दर्शन करनेको चला। परन्तु जिज्ञासु के लिये ज्ञान और मुमुक्षुके लिये मोक्ष क्या दुर्लभ है।

रातको राजमार्गकी नहरोंमें भक्तोंके पूर उभर रहेथे। मूर्तिमान भावकी तरगे चलती हुई भासती थीं। मै भी अपने मनोभावकी मूर्तिके ऐसा इन लहरोंमें मिल गया।

कोई कहोगे कि जगतभरके ज्योति हैं उन्हें कृष्ण क्यों कहे? आत्माको देहके परिधान पिन्हाये और ब्रह्मको ब्रह्माण्डके परदोंमें रख छोडा उस महामाया की अकलित कला है। काले काचके फानूसमें अमृतदी-

पक रक्खे इसतरह जगज्ज्योतिको श्यामरगमें रगा और स्नेहज्योतिको कामवर्ण दिया, इसीको कहते है–**मम माया दुरत्यया**। जगतको देखने वाली पुतलीभी प्रभुने श्यामरगकी ही की है।

मन्दिरके द्वारपर उषा और उसका कुलमडल था। उनके दर्शन करता हुआ मैं देवके द्वारमें खडा रहा। मै लङ्काके उत्तर किनारेपर था और उषा कन्या कुमारीके दक्षिण किनारे पर विराजमान थी। सागरपरके रामसेतुके समान जनसागरपर हमारा दृष्टिसेतु बँधा।

उषाके नेत्रोंमें प्रभुके आगामी तेज अवतीर्ण हुएथे। ऐसा जानपडताथा कि मन्दिरकी दीपमालिकाके सब दीपकोंकी किरणें मानों इन पुतलियांमे ही इकट्ठी न होगई हों! मेघघटामेंसे बिजली चमके इसतरह इमका पलकोंकी बॉफनोंमेंसे दृष्टि बिजली चमक रहीथी।

लतामेंसे पुष्प खिरे, गोमडलसे धेनु बिछडे, इसतरह कुलमडलीसे एका एक उषा अलग पडगई और मानवजल प्रवाहमें खिंचती हुई उसकी नाव मेरे बरदवान में आगई। हथेलीकी पत्तियोंसे मेरे अगुली विटपको दबा और मेरा सत्कार करते हुए बोली' मेरे समस्त जीवनके कृष्णचन्द्र!

मैं चौका। इस रसबोल का रणकार कुछ अनेरा ही था। एक कलके घुमाने पर पानीकी नल शाखाओंमें सरोवरके जलपूर धगधगाने लगते हैं वैसे ही मेरी नाडियोंकी शाखाओंमें हृदयके रुधिरपूर गर्जने लगे।

मुझे ऐसा जान पडा कि आजका सयोग ही अनोखा है।

मनुष्य मेदिनीकी तरगमाला हमें मन्दिर चोकमें धकेलती हुई ले गई। खेवनीसे खेवनी मिलाकर दो नावें महासागरके मोजोंमें सञ्चार करे वैसेही हम जन सागरमें जारहे थें।

अन्धेरे आसमानमें असख्य तारकावली तरवरती है वैसे ही मन्दिर चोकके खुले मडपमे भी अगणित दीपमालिकाकी शिखाए झलमला रही थी। वह दीपमालिका ऐसी अद्भुत द्युति दिखारही थी कि मन्दिरसुन्दरी

के केशपाशमें हृदयदेशमें कटिप्रान्तमें और चरणोंमें प्रकाशमान लम्बेमोतियोंके शीसफूल नोसरहार क्षुद्रघन्टिका कटिमेखला और घुघरुवाले रमझोलही न पहनाये हों

देवद्वार पर अभी परदे थे, दर्शन में अभी देर थी।

मनुष्य जल की मोजें जहाँ उछल रही हों वहाँ एकस्थ रहना—लगर की वज्र खूटीके बिनातो—अशक्य ही था। जन मोज में तैरते तैरते हम इस जलके किनारे के पास गये और किनारे पर उतर गये।

वहाँपर तो नववर्षाके नीरसे सींचीहुई पुष्पप्रफुल्लित फूलवाडी थी। फूलोंके पौधोंपर फूल उभर रहेथे मानो गगनके तारे जगतमें न बिखर गयेहों! फुवारोंकी जलधारायें उछल रहीथीं मानो पृथ्वीके हृदयके रस की धारायेंही उछल न रही हों!

शरदके स्वच्छ जलके समान उषाकी अखियाँओंके तेज इस अन्धेरी रातमें भी पूर्ण निर्मल प्रकाश फैला रहेथे और शरद की चान्द्रिका के समान अमृतोज्ज्वल शोभा दे रहे थे।

फूलवाडी की पखडियाँ जैसे पोढी हुई थीं वैसे ही हमारेभी दिल की पखडियाँ उस स्वच्छ वातावरण में नर्मी, ढलीं और घडी भरके लिए पोढ गई। उषाने कहा, आज तुझसे मेरे उरमें वसी वज रही है। मैंने कहा, ये स्नेहके अनहद नाद है।

चन्द्रके फिरने पर तेजोवर्तुल जैसे फिरता है वैसेही हमारी करमालाये एक दूसरेकी कटि मेखला बनकर लिपट गई। लता जैसे लतामें गुथे, और सखी सखीसे मिले वैसेही हमारे देहकी गुथन अविकारी और अव्यय थी। हमारी पलकें फरकती न थीं और एकभी रोमके किरणबाणमें विषका विकार या दश न था। पृथ्वी पर खड़े होकर भी हम पृथ्वी को भूल गये थे, पांखसे पाख भिडाकर आत्मभूमि में उड रहे थे।

परन्तु उस रातको तो हमारे देहमहलमें सूर्य उगे थे।

संसार की फूक लग रही हो, दिशा दिशाकी सूचना हो रही हो, जगत्प्रवाहका सीत्कार आरहा हो इस तरह उस समय एक हलकीसी वायुकी लहर आई और फूलोंके पौधे हिले। पृथ्वीके उरके परिमल सौरभ फैला रहे हों, नयनोंके अमृत खुलते हों, देहमन्दार महकते हों इसतरह हिलते हुए पुष्प पौधोंकी कुसुम सुरभिने हमें बधाया और हमारे देह प्रासादकी खुली हुई खिडकियों के रसरंगीले अन्तर खंडमें वह जा उडी। देवालयमें धूप उडे वैसेहीं हमारी अन्तर गुहामें पृथ्वीके पुष्पोंके परिमल फैल गये।

हमारी भी इस वसुन्धरा और गन्धवती के वसु और सुगन्ध पृथ्वीके परिमलोंने जागरित किये। निवास स्थानमें स्थिर रहे हुए आत्मदीपोंको इस परागलहरीने हिलाये। नहरोंमें पूर गरजे वैसे हमारी नाडियोंमें हृदयके पूर धबकने लगे। कुदरतके कितनेही बंध इस क्षणमें हमें टूटते हुए से जान पडे।

इतनेमें ही आरती की घंटी बजी और त्रिलोकी पर जाहिर हुआ कि जगतके रसचन्द्र श्रीकृष्णचन्द्रका जन्मयोग फिर सालभर के बाद आया है। जन्मकी रातको जमनाका पूर उमडा था वैसाही भक्तोंका पूर आजभी उलटता था। उसी पलमें एक बदलीने जगतको अमृत छींटों से बधा लिया। उसी पलमें आकाशके महाजलमें तैरती-चलती चन्द्रमाकी नाव, श्रीबालकृष्णके ऐसे शशाङ्कको धारण किये हुए क्षितिज पर आ पहुची मानों ब्रह्मलोकमें से ब्रह्म ज्योतिको जगतमें न ला रही हो!

इसी पलमें हमारे भी स्नेहज्योतिका जगमें अवतार हुआ। कटिप्रान्त से हटकर मेरा हाथ उषाके केशपाश पर गया और नीचेकी ओर पुष्पोंको देखती हुई उषाको उन्मुखी—चन्द्राभिमुखी कर चन्द्रस्थित श्रीकृष्णचन्द्रके दर्शन कराये और—चन्द्रिकाके रसाभिषेक की याद कर

कर–इस ज्योत्स्नाकी अञ्जली अञ्जली से उषाके मुखचन्द्रको अभिषिक्त किया।

उषाने मेरी अखियोंमें देखा शतदल कमलके ऐसा उसका मुखकमल प्रफुल्लित हो रहा था और दिशादिशामें उसकी पंखडियोंकी किरने फैल रही थीं।

मेरा मुखारविन्द उसकी मिहमानी करनेको गया और कमलपात्रिका से पत्रिका चापी जाय उसतरह हमारे अधरोंने एक दूसरेको चापा। प्रेमके प्रथम चुम्बनका अमृतप्याला दोएक घडी हमने खूब चूसचूस कर पिया।

अहो! आयुष्यकी वह दिव्यपल! रसचन्द्रिकामें झूमते-झूमते, सच्चिदानन्द के रसझूले पर झूलते-झूलते, हम जगतके रसानन्दकी आराधना कर रहे थे। ऐसा सुन्दर उस समयका हमारा धन्य जीवनयोग था।

इस तरह गुथे हुए जीवन क्या कभी अलग हो सकते है? सरोवरकी पालों को फोडकर जैसे जलका प्रवाह बहता है वैसे ही हमारे अधरकी पालों पर से परस्पर में प्रेम प्रवाह बह रहा था।

हमारी करलता देहके रसाल पर लिपटी हुई थीं अतएव नयनोंको नमाकर बालमुकुन्दकी रसकलाको नमस्कार किये और उस रसमूर्तिको हृदयके सिंहासन पर पधरा लिया।

चन्द्रिका चमकने लगी। वह हमें तो ऐसी जान पडने लगी कि हमारे उरदेहमें के राधाकृष्णकी रसचमक ही जगत भरमे न चमक रही हो।

वाचक! देहखोली के जीवों के अरसपरस बदलनेका तो तूने अनुभव किया है न? हमारे तो ऐसा ही हुआ था। मेरा जीवनज्योति उषाकी देहशाखामें जा बैठा और उषाका जीवनज्योति मेरी देहशाखामें। उस प्रथम प्रेमचुम्बनकी पावन छिनमें हमें तो ऐसा ही भान हुआ।

इस तरह हमारे तो प्रेम प्रभुका कामावतार हुआ।

प्रकरण ७ वा।

शरद पूर्णिमा।



वह रसीली रात आई कि जिस रातका मोह प्रभुको भी हुआ था, वह चांद उगा कि जिसे छह महीने तक प्रभुने आसमान पर रोक रक्खा था और अखड अमृत झेले थे।

शरदपूर्णिमा जैसे सब पूर्णिमाओंकी रानी है वैसे ही, केवल कुमारिकाओंकी कलिकाओंकी ही नहीं, परतु पूर्णिमाओंकीसी सुन्दरियों की भी उषा सौन्दर्यरानी है। उसी रातको यह मेरी समझमें आया कि ससारजीवन के विलास और लीला, प्रकाश और सच्चिदानन्द है।

आकाश और पृथ्वी के मैल धो धो कर वर्षा बीत गई थी। व्योम और वातावरण—उषाके अग और अम्बर के समान निर्मल और उज्ज्वल हो गये थे। उषाके अवयव अवयव पर प्रकट हुई किरणावली के ऐसी वनकी वनश्री प्रफुल्लित हो गई थी।

अष्टमी के दिन देवीने असुर मारा था, और दशमी के दिन रघुवीर देवने राक्षसराजका वध किया था। समझे-बेसमझे लोकसघने इसके उत्सव किये। कोई कहोगे कि कितनी-कितनी मानव देविया और कितने कितने मानवदेव इन तिथियोंके दिन अपने हृदयमें के दैत्योंका सहार करते है?

लकाविजयके राम महोत्सवोंको पालती हुई राजाओंकी सवारिया राजनगरोंमें निकलीं परन्तु उषाके रसमहोत्सवकी राजसी सवारी की सजधज उस दिन अलौकिक ही थी।

इसके बाद शरदपूर्णिमाका सूर्य उगा, अस्त हुआ और साझ पडी, जगतके नयन आशा भरी दृष्टि से पूर्वकी ओर देख रहे थे। उस एक ही चन्द्रके दर्शनोंका सबको अभिलाष था कि जो चन्द्र बारह महीने में एक ही बार दर्शन देता है!

धीरे धीरे साझ पर रातके रग चढने लगे, धीरे धीरे इस रातके रगमें तेज किरण प्रकट होने लगे। ऐसा आभास हुआ कि अन्धकार भी मानो उज्ज्वल ही न हो। सुन्दरिओंके अगकीसी पृथ्वी भी तेजस्वी हुई। रसकी राजकुमारिका के ऐसी पूर्णिमाकी चन्द्रकला गगनके तखतपर आ बिराजी।

उस रातको तेज-छाया के ध्वज जगतभरमें उड रहे थे और पृथ्वी पर फैल रहे थे।

जैसी आसमान के तख्त पर यह पूर्णिमा थी वैसी ही मेरे हृदयके सिंहासन पर उषा प्रकाशमान थी मानो मेरे जीवनकुजकी शरद चन्द्रिका ही न हो।

देहके आयुष्य कितने वर्षके हैं इसका अडसट्टा भ जानता हू। परन्तु यह तो कोई समझादो कि आत्माके आयुष्य कितने युगके है। मुझे ऐसा जान पडता है कि उस रातको जो शरद पूर्णिमा मेरे आत्मब्रह्माण्ड में उगी है वह तो युग युग तक तपेगी।

नगरजनोंने स्वच्छ श्वेत वस्त्र पहने थे मानो चादनीके ही वस्त्र न हों, मानो सबके प्रकटहुए पुण्योंके परिधान ही नहों। मैं भी मलमलका एक कुर्ता पहनकर चादनी में निकल पडा सफेद किनारी की सफेद धोती थी मानो दूधकी किनार वाली ही धोती न हो।

मुहल्लोंमें भीडभाड़ थी। नगरके चौकमें लोकोंकी धामधूम थी। घरोंके द्वारों में लोगों में मेदिनी जमी थी। लोकों का महासागर तूफान पर था और अनेक उपसागरों में भरती पहुचती थी—उभरती थी। जगत के

सुभाग्यका सा चन्द्रिकाका महोदधि आसमानमें उठा। जैसे जैसे भरती जमती गई वैसे वैसे तूफ़ान कम हुआ। चान्द्रिका और मानवोंके महासागर को बडी बडी तरङ्गों के आन्दोलन प्रारम्भ हुए।

सृजन समय में पद्मके झूले पर जैसे ब्रह्माजी झूलते थे वैसे ही रसके झूले पर चन्द्र और मैं आज झूल रहे थे और कुछ कुछ तेज सृष्टिकी रचना कर रहे थे।

व्योम सुन्दरी के वदनमें से बरसते हुए स्मितके पीयूष-प्रकाश हमारे नगर पर गिर रहे थे।

नव रात्री के गीत पूरे हो गये थे। दिन दिन चन्द्रमाकी एक एक कला बढती गई। प्रत्येक रातको चान्द्रिका की बहार विशेष विशेष खिलती गई। लोगों के अन्तर का उमरा भी दिन प्रति दिन चढता गया। इस भरती के रसोत्सव का आज पर्व था।

किस के हृदय में गोप गोपी के भाव नहीं हैं ? जल शून्य जमना नहीं है और न अमृतशून्य चन्द्र है। सुधाकर सुधा बरसाता है उस जगत में और निरन्तर बहती हुई रसयमुना के तीर पर बसनेवाले मधुवनके सब नरनारी गोपगोपी ही है और रसके रास ही रचते है या रचना चाहते है।

वृन्दावन की उस छह मासी पूर्णिमा की आज सुन्दर तिथि थी।

कटोरे भरभर कर मानों चन्द्रिका का ही पान कर रहे हो इस तरह खीरका पान करते हुए नगरजनों को देखता हुआ मैं ज्योत्स्ना के पूरमें बह रहा था। जगह जगह लोकोंने दीपमाला की थी किन्तु प्रकाशहीन दीपशिखायें नीमकी पीली पीली पत्तियों सी जान पडती थीं। पूर्णिमाकी भी न्यूनता को पूर्ण करने वाले संसार में है सही ?

इतने में ही चांदनीमें तैरता हुआ रासके संगीत का शब्द दूरसे आया।

हरि वेणु बजाते हैं वनमें,

वृन्दावन में हरि की वेणु बजी और गोपी सबको आमन्त्रण होने पर तनमनाट हुआ, इसीका गीत नगरकी नारियोंका समुदाय गा रहा था।

लगी-लगी तालावेली मेरे तनमे।
हरि वेणु बजाते हैं वनमे,

शान्त सरोवर में ककरी के गिरने की भाति मेरे अन्तर के जलमें ककरी गिरी और धीरे धीरे लहरें उठने लगीं। वेणुके टहुके जगे नहीं, वे तालावेली के शब्द से भडक उठे। रोम रोम में ऊर्मिया उछलने लगीं मानों पूछने लगीं कि कहा है हमारा चन्द्रमा? मेरा उदधि उषाके दर्शन के लिये गर्जना करने लगा।

सौंदर्यकी साडियों के ऐसा उन सखियों को पार कर मे उषाकी खोजमें निकला। पूर्णिमा का दूसरा प्रहर जमा। मध्यरात होने में अब भी विलम्ब था। कौन से रस चौकके रासमडल में उषा घूमती थी सो मै जानता था, मैं उसी ओर चला। अन्तर तो पाखों पर सवार हो उषाकी परिक्रमा करता हुआ ही उड रहा था।

पूर्ण कला के तेजवृन्द को फैलाकर तारिकाओंके वर्तुलवृन्द मे चलती हुई चन्द्रज्योति तो आख भरकर कई बार देखी है न? इनमें की सर्वोत्तम पूर्णिमा की याद करो तो उषाके सखी मडल में का रस-वहन कुछ समझ पडेगा।

इस चौक का नाम रतनचौक था। क्यों कि रतन हवेलियों में रतन के ऐसे सज्जन और रतनके ऐसी सन्नारिया रहती थीं। उनकी सद्भावनाओंके रतन वहा पर निरन्तर चमका करते थे। आज भी आखिया के रतन वहा पर अनुपम चमक दिखला रहे थे।

इतने में ही एक चमत्कारी तमाशा आया। ऐसा जान पड़ता था कि पृथ्वी पृथ्वी के सूरज ही न हो! झूमरे लटक रहे थे और झूमरोंमें

के दीपकों के इतना रस दीपिकाओं की सी रसिकायें रास रम रही थीं। सब सखिया बालमोंको सन्देश भेज रही थीं और सब अपनी अपनी दिशामें किरणें फैला रही थीं।

कुजलडीरी ! सन्देश हमारा
बालम को जा कहना री !

अलबेलियों के अग अग से चिनगारिया उड़ रही थीं और दिशा-दिशा में जा कर ज्वाला पैदा करती थीं।

सबके दिलकी कुज विहगिया दृष्टि की पाख से उडती और रसिकाओं के रस सन्देश रसिकवरों को सुना आती थीं।

विह्वल पछिनी की—सी उषाकी दृष्टि उस जन घटा में व्यर्थ तडपती, उड उड कर पीछी लौटती और निराश हो देहकी शाखा पर बैठती हुई मैंने देखी। इतने में ही एक दूसरी सहेलीके चकोरकेसे लोचन अपने चन्द्रको खोजने के लिये उडे। इसी छिनमें उषाने मुझे निरख लिया। निरखा कि स्मितकी सौन्दर्य झलक से सत्कार किया। पाखों की सी पलकों को नमाकर नमन किया। उरके सन्देशको सुननेवाला सन्मुख खडा है इसका अनुभव होते ही आज का गीत निरर्थक नहीं है—इस उल्लास के विलोल प्रकाश विकासित पुतलियों में चमकने लगे।

इसके बाद क्या गीत गाया गया इसकी मुझे खबर नहीं है। मेरी इन्द्रिया नयन में आ बसी थीं और नयन उषामें जा बसे थे। उषा रासमडल घूमती थी वैसे ही नयन भी घूमर दे रहे थे।

इस रातको मुझे एक प्रश्न उठा कि उज्ज्वल पूर्णिमा की रातको आसमान के परिधान क्यों पिन्हाये गये है ? उषाके अग पर भी रात की-सी श्याम साडी थी और भीतर से सुनहरी-रूपहरी तारे झलमलाते थे। बीचमें चन्द्रमा के ऐसा मुखचन्द्र प्रकाशित हो रहा था। शरदपूर्णिमा

के गगन की ही मूरत पृथ्वीपटल पर घूम रही हो इस तरह उषा घूम रही थी।

गहनता के आभरण जैसे उसक आत्मतत्व के थे वैसे ही उसके देहतत्व के भी थे।

कुडके गहरे जलमें लहरें उछल रही हों वैसे ही उसकी साडी में लहरें चल रही थीं। बीचमें हृदय देशको उषा रगी चोलीने झेल रक्खा था। भीतर कमल गुथे हुए थे। भवरे के ऐसा मेरा जीव इन कमलोंकी कालियों में बन्द हो रहा था।

यह गीत पूर्ण हो गया उषा खडी हो रही तब कहीं मुझे जान पडा कि गीत पूरा हुआ। इतनेमें ही फिर रासका प्रारम्भ हुआ। गोपियों के गीत की धुन नगर की हवेलियों को पार करती हुई फैली —

मेरे मनमोहन महाराज मेरे महेलों आवोना !

सब गोपियों ने इस बोल को वडी हौंस के साथ झेला, मानो सबके निजी मनोभाव ही उच्चरित न हुए हों इस प्रकार अपनी प्रियतम दिशाओंकी ओर सब सुन्दरियोंने मुस्कराते हुए मुखसे इस गीतका प्रत्युच्चारण ध्वनि किया। सागर में भरती आने पर तटके जहाज हिलने लगें इस तरह प्रेक्षक वग के वर्तुल में भी हलचल मची।

सब सुन्दरियों के मुखपर रसतेज प्रकट हुए, हसी प्रकट हुई। उषाके अधर पर स्मित और लाजकी लहरें आ रही थीं। गुरुकी दो तारिकाओंके से उसके दोनों नयन उज्ज्वल और प्रफुल्ल थे। बाल सिरूकी सी वह पूर्ण शोभा के साथ एक बार मेरे साम्हने खडी रही। ताली देते हुए नमस्कार कर पलकों की पत्तियों से मुझे न्योता। सारे जीवन के कुजमें और उसके भी अगले पार ये नयनों के निमत्रण मुझे याद रहेंगे।

मै तो तरसूं तुम्हारे काज हसके बुलावो ना ।

रसालोद्यान के रसालोंकी घटाओंको पार करती हुई कोयलों की परिदेवना कूक उडती है, वैसे ही रासवैतालिकों की ये ध्वनिया सहकार-केसे रसमधुर रसिकोंकी अन्तर्वेटाओं को पार करतीं हुई चलीं । सबके हृदयकी मजरिया झोले पर चढीं ।

यौवन की ऊष्मा और अभिनव अभिलाषों के रगमें रगी हुई एक युवती ने यौवन की रेलपेल चलाई ।

दुनिया में कौन से प्यारे किस प्यारे के लिये नहीं तरसते ? प्रियतमा की आरजू कौन से प्रियतम को नहीं होती ? भूख और प्यास के समान यह भी आत्माकी-प्रकृतिजन्य-भूख और प्यास है । परन्तु जो अखड एक दृष्टि है, जो स्नेह समाधिस्थ है, वे योगसिद्धिको पाते हैं ।

रास रचती हुई रसिकाओंकी भौहों की काली मछलिया अन्तरिक्षके जलम किलोलें करने लगीं और सब श्यामाओंने गीतकी प्रतिध्वनि की —

मै तो तरसूं तुम्हारे काज हँसके बुलावो ना ।

मधुरवा मधुरियों के मधुर सवादमें से भी मैंने उषाके जल मधुर स्वरको पहचानलिया । द्रौपदीके स्वयवरमें स्वयवर स्तम्भके चारों ओर के कुंडमें घूमते हुए मत्स्य प्रतिबिम्बको देख मत्स्यनयन को बेधने पर गाडीवधन्वाने जैसे मत्स्यबेध कर पाया था वैसा ही कुछ मुझसे भी बन पडा । रासमें घूमते हुए उषाके नयनमीनकी पुतली में मेरा दृग्बाण जा लगा । एकाएक आख मिल गई । एक ही बाण मारा और वह जा लगा । स्वयवर में मैंने अपनी द्रौपदी पाई परन्तु पाचों पाण्डवोंके ऐसे मेरे पाचों प्राण उस मेरी द्रौपदीके अधीन हो गये ।

रासका स्वयंवर था और उसमें स्थान स्थान पर प्रियतम प्रियाओं के मत्स्यवेध हो रहे थे। क्या नर और क्या नारी सब अपने अपने प्रियजन को आशा पूर्ण आखों से खोजते और पाते थे ।

मनुष्योंके अच्छे और बुरे नाना प्रकार के लक्ष्य होते है । मोक्षके समान स्नेहलीला भी इस जीवनका परम लक्ष्य है ।

यह रास पूरा हुआ। देविया दुर्गाके पास जावें वैसे सखिया उषाके पास गई। बहुत कुछ अनुनय-विनय करने लगीं परन्तु उषाने उस प्रहर में न गाया।

क्या युवा अकेले ही मसखरे हैं ? युवतियांका मजाक तो ऐसा होता है कि अग अग और रोम रोम में आत्माके अमृतसर बहा दे।

पीछे से रसचमत्कारसे चमकती हुई चन्द्रिका आई और बोली' क्या सूर्यका पदसचार अभी नहीं हुआ ? उषाका उदय होने में भी देर होगी क्या ? उषा !

उषाकी आखोसे त्रिशूल निकला, शब्द मुख मडप में ही समा गये, सारा सखीवृन्द एक टक मेरी ओर देखता हुआ कहकहा लगाकर हँस पडा मानों फूलों की झड ही न लगी हो !

एक हँसोड सहेलीने कहा तब भलेही अब चन्द्रिका चमके।

चन्द्रिकाने उत्तर दिया कि चन्द्रिका कब 'ना' करती है ? यह तो आसमान को छाकर खडी है जहा-की-तहा ! परन्तु देखना वह पूछे उसके उत्तर देना भला।

क्षितिज के आस पास तारिकायें फिर जाय इस तरह सब सखीयोंने पीछा घेरा घाला। चन्द्रिकाने वही अलबेली गीति छेडी जिसके प्रश्नों को पूछ पूछ कर वह सदा उषाको तग किया करती थी।

"सौभाग्यमूर्त्ति है क्या ये सजाई ? सहेली !"

बिजली जिस तरह क्षितिजके उद्यान मे उडती हुई प्रकाश करे वैसे ही प्रश्न के साथ ही चन्द्रिकाकी दृष्टिसौदामिनी हँसती हँसती सहेलियों की बगीचियों में उडने लगी और सखियों को रसप्रश्न पूछ पूछ कर हँसाने लगी।

गम्भीरा के मुख पर भी स्मित की रेखा प्रकट हुई।

"खडी रहो तो छेडे दिलकी बातें, सहेली!"

पथम कुदकेमें ही तारा सरिताके पूर्ण प्रवाह में तिरने और उछलने लगे वैसे ही रसिकायें रसप्रवाह में बहने और झूलने लगीं। उपनिषद जिसे जगत्या जगत् कहती है उसमें स्थिरचित्त और स्थिरपदसे कितने खडे रह सकते हैं? अचल चौक कोई है? परछाई भी न पडी हो ऐसी कुमारिका भूमि कितनी है?

> रूपकी कला बनाके चतुरा! कहा चलीं! सहेली!
> छबिली! ये छोगे मोहके क्या पहने? सहेली!
> अभी तो वसन्तकी लहर पहिली आवे, सहेली!
> उरकी उमग से लो विश्वको बधावे, सहेली!
> है अभी तो देर, इतनी जल्दी? सहेली!
> है ऐसे क्या काम? जो इतनी गैली, सहेली!

सरोवर के मीठे जलकी लहरों में जैसे पद्मिनिया उछलती और नमती है वैसे रसयुवती की देहवल्लिया रासमें घूमते हुए नमती और उछलती थीं। सरोवर में झोले खाते हुए कमल के ऐसे युवतियों के मुख कमल झोले खा रहे थे।

चन्द्रिका के मुख और लोचन मे से चिडियो के बच्चे से उडते थे और सहेलियों की हृदयघटा में 'चीं चीं' करते लौट आते थे।

> चन्दनचोपडे मनो कुकुम भरे, सहेली!
> गोरे गुलाब को यो मुख धरे सहेली!
> कोंपल की ओटमे तारिका झलके सहेली?
> पलको की पँदडियों कीकिया मुळके, सहेली!

फरफराते हुए सुकुमार नव पल्लवोंमें तेज किरण खेल करे और तिरवरे वैसे नयननयन की कोंपलों में से कीकियों के किरण निकलने

लगे। रसिकाओ के रस प्रवाह मे जोम जमा और रासके फिरने में भवर और चक्कर आने लगे।

वायुकी लहरों के चलने पर बिखरी हुई गुलाबकी पत्तिया उछले और उडे वैसे सुन्दरियों के सौन्दर्यकी पत्तियोंकी ऐसी पद कोंपलें सुकोमल नृत्य से किरणो के समान नच रही थीं।

> सरितामे पूर आज ये कैसा ? सहेली !
> वर्षाका जोर आज ये कैसा ? सहेली !
> अम्बुज अखियो में क्या अजन सारा, सहेली !
> भौहों के चाप में क्यों वाण धारा ? सहेली !

सूरजमाला चस्कर पर चढे इस तरहका रास घूम रहा था। उपाके अगो पर चादनी छिटका रहाथा और देहकी चन्द्रिका के आसपास आसमानी साडी फरफरा रही थी। सरिताकी ऊर्मियों में तैरती हुई दीपनौकाये झिलमिलाहट करती हो इस तरह साडीकी ऊर्मियो में कामके तारे झिलमिलाहट कर रहे थे। कमल के फूलों पर गहरे कमल-पत्रों को ढाकने और फिर पुष्पों को दिखलाने के लिये उठाने से जैसी छटा देख पडे वही छटा उसके चरणारविन्दों पर घूमते हुए लॅहगे के घेर दिखला रहे थे। उसकी करलतायें रस लहरियों में नाच रही थीं मनो बसन्तकी अनिल लहरियों में लताय नाच रही थीं। हृदय के उल्लास को झेल रही हो इस तरह उसकी चोली नम रही थी। उसके अग-अग में वह अद्भुत लावण्य प्रकाश पा रहा था कि जिसे स्त्री देहमे देखने के लिये पुरुष नयन सृजन काल से ही तरसते रहते है। गगन के चन्द्रमा से जितने किरण फैलते थे उतने ही रसके निर्झर उपाके वदन से आज झर रहे थे। किसी महाकविकी महाकल्पना कल्पे इस से भी विशेष सुन्दर उपा थी मानो परमात्मा के हृदय में की सौन्दर्यभावना मूर्तिमान हो कर पृथ्वी पर न अवतरी हो !

अध्यापिका जैसे बारी बारी से बालिकाओं को प्रश्न करती हो इ
तरह चन्द्रिका मुस्कराती हुई और आखों के तूफानों के द्वारा सब सहे
लियों पर बारी बारी से प्रश्नों के बाण छोडती थी और तग कर रह
थी। 'प्रेम की पाखिनी' के उच्चारण के साथ ही भ्रू चाप में से महाश
छोडा और उषाके हृदय को वेध दिया।

अर्जुन का बाण कभी खाली गया है? कुसुमशर कब निष्फल हु
है! सुन्दरियों के शरभी शायद ही खाली जाते है बहुत करके सफल
ही होते है।

" पिया के पथकी ये दिवानी बाला, सहेली!
अँखियों उडती ये हियकी ज्वाला, सहेली!"

सूर्य के आस पास पृथ्वी घूमती है उसी समय में वह अपनी धु
पर भी घूमती है उसी तरह ये रासेश्वरी बालायें चक्ररास और धु
रास, और उसमेंभी अनेक गोल वर्तुलाकार रास रच रही थीं। मुझे त
भगवानका वचन याद आया कि —

ईश्वर सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया॥

और पुतलियों को नचाने वाला नटेश जैसे अनेक प्रकार के माया
के खेल खिलाता हे या जादूगर जैसे नाच नचाता है वैसे ही नाच
नगरकी रसकी पुतलियाँ नच रही थीं।

लताओं के ऐसी इनकी देहलतायें झूल रही थीं और प्रेक्षक वर्गों
के नेत्रों और नेत्रोंमें बसने वाले आत्माओंको झूला रही थीं।

अगमें से इतनी ये आग उछले, सहेली!
किसको दझायारे देख कौन-जले, सहेली!

कभी दो वर्तुल और कभी सन्मुख तालिया देती हुई सहेलिया
सन्मुख वाली रास गति से फिर रही थीं। सुकुमार तरुवर की शाखाओं

के ऐसी ये कोमलांगिया तरुणी तरुओंकी पल्लवकी पटालियों की सन्मुख से रस तालिया लेती देती थी । कोई केश पास से खिसकती हुई स्यालू की कोर को सँवारती थी, कोई पल्लोकी उडती-हटती हुई पाखोंको ठीक करती थीं । परन्तु पुष्पों के पौधों के परिमल पुष्पोंमें से उडे इस तरह फूलके पौधों के ऐसी इन रसिकाओं के इस परिमल नयन पुष्पोंमें हो उडते और फैलते थे ।

आज वसन्तकी ये पाचे आई, सहेली !
इतनी उतावली हो तू कहा सिधाई ? सहेली !
कोकिल बुलावेरी खडी रहना, सहेली ?
दूर वह देश है री धीमे पग रखना, सहेली !

'कोकिल बुलावे' इस बोलके साथ ही करताली और पदके ठमके के साथ पृथ्वी नृत्यध्वनि करने लगी । 'खडी रहना' कहने के साथ ही सब रास रसीलिया खडी रहीं और सोने चादी के रगवाले देहके हिंदोले आगे जॉय और पीछे हटे इस प्रकार रसीलियांके रसान्दोलन आगे बढते और पीछे हटते थे, चढते थे और उतरते थे बैठते थे और खडे होते थे । घडी भर इसी पदकी रसधुन जमी परन्तु धीमी धीमी और कोकिल मधुर कण्ठ ध्वनि से ।

सन्ध्याकी चन्द्रिका रे क्या ज्योति झीनी ढोली, सहेली !
उतरी है दर्शनको री क्या तारिका की टोली, सहेली !
फैलाये हैं फूलडे क्या सरिने पथ मे, सहेली !
पूरे है स्वास्तिक क्या प्रेमके कन्तने, सहेली !
आनन्द से उज्ज्वल है री क्या जाओ रसघर, सहेली !
सयानी सदा सोहनारी पिय नेह रसभर, सहेली !

रसिकाओंका अन्तिम शब्द आसमान को पार कर अस्त होते हुए किरण के ऐसा अस्त हो गया । गीतके विलास अस्त हुए परन्तु नृत्यकी

लीला तो और विशेष जमी । मन्दिर के रग मडपके घूमट में रगी हुई रग गोपियों के ऐसी ये रग सहेलिया मौन गीत गा रहीं थी, अग अग के अद्भुत रसनृत्य नाच रहीं थीं, रासदड के ऐसी करतालिया लगा रही थीं । और हौंस के हिन्दोले पर झूल रहीं थीं कटाक्ष के कामन, नखरोंकी रगबिरगी रत्न छाया के इन्द्ररग, ऊर्मिलाओं के अगके हाव-भाव की अमृत लहरें, विविध रगी प्रकाश के समान आसमान पर उदित हो रहे । सलीला, भाव विलासकी सारी कविता इस रतनचोकमें उतर कर घुमर देती सी जान पडी । बड की बगीची के पत्ते पत्ते पर प्रकाश प्रकेटाता हुआ चन्द्र सहेलियों के मुख पत्र पर भी रस ज्योति प्रकट कर रहा था । मन्द मुसक्यान के मन्त्र पाश और नेत्र पल्लवोंके जादूओं का विस्तार कर रसकी नजर बन्धी का खेल रासधारिणीयोंने प्रारम्भ किया था । विजलीकी लताके ऐसी उषाकी देह झूला झूल रही थीं । सरोवर की एक एक लहरम चन्द्रबिम्ब लहरावे इस तरह इस रतन चोक के सरोवरकी रसीलियों की वदनोर्मियों में चन्द्रके प्रतिबिम्ब फैल रहे थे । जगतका सारा-का-सारा सौन्दर्य ही मानो चढाई कर न आ-गया हो ।

आखिर पाल टूटे और जल झरजाय इस तरह रासमडलकी रगपाल टूट गई और रसतरग से उछलती हुई सुधाधारायें शान्त हुई और सुन्दरिया झरगई । लतायें फूल बरसावे इस तरह उनके हास्य के कुसुम पृथ्वी के पल्ले पर गिर रहें थे ।

इस शरद पूनम को मैंने जाना कि उषा मेरी आयुष्य लीलाका अमृत है ।

यह रास पूरा हुआ । कितनी ही सुन्दरिया श्रम उतारने को बैठी मानो नवरगी फूलोंकी भरी हुई छावें ही न हों । थोडी देर के बाद दूसरा रास प्रारम्भ हुआ । परन्तु उसमें उषा घूम न रही थी । एक चेबू-

तरे का आश्रय लेकर बादल और चादनी की गूथी हुई वेलके ऐसी वह जरा झुकी हुई खडी थी । उसके आस पास सोनेकी बदलियों के ऐसी चारेक सखिया पास बैठी थीं।

रतन चोक के एक कोने में एक पीपल का वृक्ष था उसकी शाखाओंकी जालियों में होकर चन्द्रतेजके फूलके ऐसे चादने पृथ्वी पर फैले हुए थे । इन्हें देखकर ऐसा जान पडता था कि घडीभर के लिये उषा यहा आनेको है और उसका सत्कार करने के लिये ही तो मानो चन्द्रमाने ये चादनी के आदरपुष्प फैलाये है !

पीपल के छायाजल के किनारे ही एक झरोका था और उस झरोके की छाया के कगुरे अश्वत्थ छाया के सरोवरजलपर पडते थे। उन छाया के कगुरोंमें सखियों के बीचमें उषा खडी थी मानो दुर्ग पर दुर्गा का विजयध्वज ही न हो !

शरद पूनमकी रातमें चन्द्रिकाको छोडकर छायामें रहना किसको भला जान पडेगा ? परन्तु उषा तो स्वय चन्द्र थी अतएव उसके लिये चादनी में रहना क्या और चादनी में न रहना क्या ? और यह बात तो गुप्त नहीं है कि जहां देवी होगी वहीं उसके भक्तका सचार होगा। शरज्ज्योत्स्ना के अमृत को छोडकर मेरी स्नेहज्योत्स्ना के अमृत के लिये उस थड के पासकी अश्वत्थ की ऊडी और गहरी छायामें मै भी पहुच गया। रास चल रहा था। प्यारके बोल आसमान को भरते हुए नगर पर उड़ रहे थे।

'प्यारी सरद पूनमकी रातरे, चाँदनी चमक रही,
प्यारी लगे पीतमकी बातरे, चादनी चमक रही, सबके मनमें जो कुछ था वही सब गारही थी। मैंने धीमेसे कहा, उषा!

पीपलके पानोंमेंसे वायु चलता था उससे भी धीमा मेरा शब्द था।

उषाने न सुना, परन्तु सखियोंने सुन लिया । उषाके नयन पुरुष मेदिनीको परख रहे थे । सखियोंके कान शब्दोंके उत्सुक थे ।

सप्तर्षि और आठवें ध्रुवराजके ऐसे आठ सोजदीपकोंके प्रकाश एकाएक मेरी ओर मुडे और मैं चौंका । दो पैर अश्वत्थ छायामें और हटगया कि इन सखीनयनोंके शोधनदीपक मुझे पहचान न सकें ।

परन्तु सुन्दरियोंके शोधनदीपकसे कौन छुपा रहसका है ?

एक सखीने उषाको वृथायत्नसे जगाई और अश्वत्थके थडके पास दूसरा थड था उसे दिखाया । सखीकृत्यके सममाव और अनुकम्पाको देख कर मेरी गई हुई हिम्मत पीछी लौट आई । मैंने फिर कहा, उषा !

क्षितिज पारसे भी धीरगम्भीर घन गर्जन होनेपर मयूर जैसे उत्कठित होता है वैसेही उषा उत्कण्ठित हुई, कलापको संवार कर तैयार हुई। अश्वत्थ की छाया की गहराई में गोर कर देखा । इस नजर की अनी में अन्तर प्रकट होरहा था । माथेके पल्लेको खींच कर उसने आधे कपोल ढके । उषाका हृदय उछल रहा था परन्तु चरण लजाते थे ।

सखिया अनुभवी और उससे बहादुर थीं । आधी चादनी और आधी छाया में एक उल्लासिनी नवयौवना खडी थी । मगलकेसे उसके नेत्र चम चमा रहे थे । उसने उषाको धकेल कर कहा' देख उधर, बुला रहा है तुझे, जा ।

उसी समय झरोखेसे सखियोंके शिरपर पुष्पवृष्टि हुई और चारों सखियोंके सीने पर चार पुष्पमालायें आसमानसे गिरीं । कलियुगमें भी आसामानसे बरसती हुई फूल मालायें मैंने तो अपनी आँखोंसे देखी है ।

ध्रुव और प्रल्हादको प्रभु मिले थे वैसेही हम दोनों मिले । कौमारकी और यौवनकी हमारी सद्‌भिलाषोंका—आमोंके मोर आवें इसतरह—प्राकट्य हुआ और वे वाञ्छायें प्रफुल्लित हुईं ।

मुमुक्षुके मोक्षके ऐसी उस समयमें केवल मोक्षकी घड़ी थी । रास घूमही रहा था । अश्वत्थके पान पान पर प्रकाश करती रासरसीलियोंके गीतकी संगीतध्वनि फैल रही थी ।

' भरभर अनन्तताके चोकरे चाँदनी चमक रही ।

मेरे पियूके हियके चोकरे चांदनी चमक रही । मझ आधीरात जम रही थी । देवोंके मुकुटके ऐसा माथेपर चन्द्र विराजमान था । संसारके वनकी कुजकुजमें उसके अमृतके पूर ठले हुए थे ।

वृन्दावनमें गोपी और कन्हैया जैसे मिले थे वैसेंही हम मिले । इतनेमेंही हमारे अश्वत्थछायाके सरोवर जलकी तीरपर होती हुई एक गोपी गाती हुई गोकुल छोड अपने वृन्दावनको गई कि

कैसे रहना ? कैसे रहना ?
गोकुलमे कैसे रहना रे ?

उषाके हृदयमें भी इस भावका उभार था । पुष्पपखडियोंपर पॅखडीके ऐसी हमारी करताली हो रही थी । उसे दबाकर उषाने पूछा' पीहरके गोकुल कबतक रक्खोगे ? सुसरालका वृन्दावन कब दिखाओगे ?

करमें कर गूथ कर मेरे मुख और नयनों को पढती हुई वह खड़ी रही । चान्द्रिका किरण फैंकती है और पृथ्वी झेल लेती है वैसे ही मैंने उषाकी अंगुलियों और नयनोंकी किरणोंको झेल लिये, मेरे कुमुदकी सब पॅखडिया प्रफुल्लित हो गई ।

मैंने उत्तर दिया कि यह समय आया है तो वह समय भी कभी आवेगा, जीवन के सारे बन्द्द्वार खुलेंगे ।

दुनिया से अलग अश्वत्थछाया का द्वीप था । उस द्वीपमें हम दोनों खड़े थे ।

उषाने फिर कहा मेरे अनिरुद्ध ! अब नित्य नित्य मुझे आपके स्वप्न आते है ।

स्वप्न संसारके तीरपर हम खडे थे कई कई प्रकारके स्वप्न हम देखते और कई कई प्रकारके कल्पना करते थे ।

कविताके आकाश में पतङ्ग उडाकर कभी बिजली उतारी है? कवि कविता रचता है वैसे ही हम भी उस समय जीवन की कविता रच रहे थे ।

ओ कल्पना के बालक ! जीवन की कविता तो तूने भी रची हैन? इन स्वप्नोंकी ससार सृष्टि तो तूने भी सरजी है न? हमारे कवित्व स्वप्न इनसे अनोखे न थे ।

मैने कहा वह चित्रलेखा न होती तो हमारा आजका यह स्वप्न भी सच्चा न होता । जीवन ही स्वप्न है, यह घडी भी स्वप्न है और मेरे कधे पर यह तेरा मस्तकमुकुट—प्रफुल्लित कमल के ऐसा—विराज रहा है •

इतनेमें ही रास बन्द हुआ और एक रसरँगीली की आवाज आई कि उषा कहा है? मध्य रात जमी है तो वह अपना पूनमका रास गावे ।

हमारे अगुलियों के दोर को तोड मेरे चन्द्रपुष्प और उरपुष्पको मसलती हुई उषा छायासरोवरमें से चान्द्रिका में और साथ ही सहेलियों में जा पहुंची ।

आसमान की अतल गभीरता देखी हो इस तरह मै तो आश्चर्य मुग्ध होकर खडा हो गया । मेरी ऐसी ही हालत हो रही थी मानो स्वर्गदर्शन कर के कोई मानव पृथ्वीके पटलपर आकर न खडा हो गया हो । जगत के और जीवन के भेदके परदे उठते-से जान पडे और जीवनके नाटक का महाप्रवेश होता हुआ भासमान हुआ ।

कोकिलाकी कूकही न उठी हो इसतरह मेरी कोकिलाकी कूक उठी । सखिओंके आमन्त्रणको मान देकर उषाने रास छेडा—

" उगी कैसी शरदपूनम रूपवती
विराट आज रमणपै चढा रे लाल ! "

दूसरे रास सरिताकी लहरियोंके से थे परन्तु यह तो एसा जान पड-ताथा कि मानो रससागरके बडेबडे मौज घूमते और विस्तार पाते हों।

आसमानके चँदवेको छाकर यह कूक हो रही थी। विराट्की तरह उषाका अन्तर रमणपर चढा था। इसके कण्ठमें उल्लास था और अगधटा मदमाती झोले खा रही थी। मेरे अन्तरकी गहराईमें यह कूक जा विराजी और अन्तरजलशायी विराट्को रमणपे चढा दिया मन्दराचलकी डोरीसे खींचनेपर क्षीरसागरमें जो मन्थन हुआ था वैसाही मन्थन मेरे अन्तरके सागरमें होने लगा।

चन्द्रकिरणकी कलिकाओंकीसी सुन्दरिया रासमें घूम रहीं थी। उषाके शब्द शब्दमें हृदयकी डोरीका धक्का लगता था। मुझसे यह हृदयमन्थन सहन न हो सका। मै चल पडा।

उषाकी दूसरी कूक उठी, मेरी आत्माके महानुभाव अभिलाषोंकाही जगतमें प्रतिध्वनि कर रही हो इसतरह चन्द्रिकाके जलमें तैरती प्रवाहित होती हुई आई।

" लोक लोक गाजे गमीर रसताली
विराट आज रमणपै चढारे लोल। "

उस बालिकाने विराट को रमणपर ही चढाया था। ब्रह्मने ब्रह्माण्ड लीलाका बिस्तार किया था उस अवसरकी कूक उषा लगा रही थी। मेरे भीतर और बाहरका सारा ब्रह्माण्डचक्र आज मुझे महारासमें फुदी देता हुआसा जान पड़ा। गोपियोंके फूलनिकले हुए लहगोंके घेरके ऐसा चन्द्र और तारिकाओंसे गूथा हुआ चन्द्रिकाका घेर मुझे गगनमें घूमता हुआ देख पडा। विराट की गहरी गमीर रसतालका अनहद नाद अव-

काशके महासागरका उल्लंघन कर लोकलोकमें फैलता हुआ जान पड़ा। रासमें घूमती हुई किसी रसिकाकीसी पृथ्वी भी घूमर देतीसी भासित हुई। उढते विमान में बैठा हुआ मनुष्य स्वयभी उडे इस तरह रमण पर चढे हुए विराटमें मै भी पंखेकी भाति रगरमणपर चढा। मै कहा था, कहां जाता था, ये सब मेरे लिये शून्य था। विराट घूमता था, चन्द्रिका घूमती थी, मै घूमता था और रासमें उषा घूमती थी। मेरे लिये उस समय केवल यही एक परम सत्य था कि ब्रह्मरासमें ब्रह्माण्डका और ब्रह्माण्डके बालकोंका निरन्तर घूमना हो रहा है।

राधिकाजी और कृष्णचन्द्रने लीला की थी, महामाया और परब्रह्म लीला करते हैं, वही परमजीवनरास मुझे और उषाको आयुष्यभर रचना चाहिये। यही मेरे अमर आत्माका उद्देश आदर्श लक्ष्य और मोक्ष था, यही हमारे रसजीवनकी कालातीत रसलीला थी।

प्रकरण ८ वां।

कृष्णपक्ष।



ल और दिशावाले इस जगतमें तो वियोग विनाके सयोग देखे नहीं, विरह बिनाके विहार सुने नहीं। दिनरातकी घटमाल जबतक फिर रही है तबतक प्रकाशके बाद अँधेरे होवेंगे ही। ब्रह्ममहलमें अनस्त तेजवाला जब वह ब्रह्म दिवस उगेगा तब रात्रिया सिकुड जाँयगी, कृष्णपक्षके अधेरे परदे इकठे हो जाँयगे और परमज्योतिके सागरजलही विस्तृत हो रहेंगे तभी सत् और चित्के परमानन्द प्रकटेंगे।

मृत्युलोकमें भी इसकी आशा ही है।

मानव अमर नहीं है। जन्म और मृत्युके सयोग और वियोग भी लगे हुए हैं। मनुष्य जातिके देहके पक्के रगके ऐसे ही है।

मेरेभी ऐसाही हुआ। आशाको मै जीवनाधार मानता था परन्तु इतिहास तो निराशा के ही रचे जाने लगे।

और किसके लिये ऐसा नहीं हुआ? देखा है किसीने ऐसा मनुष्य कि जिसके अन्तरमेंसे विषादकी बाफ न उछली हो? या जिसके नयनोंसे शोकके आसू न टपके हों? देखा हो तो बताओ, ओ दुनियाके समझदारो! ऐसा मनुष्य।

विरहानलमें न जले हों वे भलेही सुखपूर्वक मेरी हँसी उडाना, परन्तु मेरे पर अनुकम्पा करना वे जिन्होंने इस आगके शोलों मेरे भेखकी कफनी ओढी हो?

पृथ्वीका प्ररिक्रमण करनेवालोंको अनुभव होता है कि पृथ्वीका तल समभूमि नहीं है। दोदो–तीन तीन कोस ऊचे फैले हुए पर्वत, कोट और शिखरकागरे है। दोदो–तीनतीन कोस गहरी महाशागरकी विशाल परिखायें हैं। ऐसा होने पर भी रणशूर इन्हें उलाघ जाते है, इन्हें तैर जाते हैं और जगत्के दुर्गपर जयध्वज रोपते है।

दुनिया में के किसी अजित दुर्गको कोई बतावेगा ?

जीवन में बार बार नहीं आती ऐसी वह मेरी शरत्पूर्णिमाथी। उसके बाद के प्रभात से ही जगत में और मेरे जीवनमें कृष्णपक्ष प्रारम्भ हुआ। तबतक तो हमारे सौभाग्यचन्द्रकी एक एक कला बढ रही थीः उसके बाद उसकी एक एक कला कम होने लगी।

हमारे भाग्यके षोडषदलकमल की एक एक पखडी अब रोज रोज़ खिरने लगी। कभी न कुम्हलावें ऐसे पुष्प तो देववाटिकाके होते है। मानव स्वय कुम्हलता है उसकी वाटिकायें और वाटिकाओं के कुसुम भी कालकी लूमें क्योंन कुम्हलायगे ?

प्रतिदिन ब्रह्ममुहूर्तमें मै जगता था आज ब्रह्ममुहूर्तमें मै सोया। मेरे जीवनकी गगानेही उलटा बहना प्रारम्भ किया।

पूर्णिमाके दुसरे दिन मै कोई दस बजे उठा। माताने आरोग्यप्रश्न किया, आरोग्यप्रश्नके उत्तरमें लोकसंघ एक अर्थहीन शब्दका प्रयोग किया करते है। मैने भी साध्वी माताको उत्तर देते हुए उसी शब्दका प्रयोग किया ठीक है। शरीरकी थकावट तो मेरी उत्तर गई थी परन्तु मनको विश्राम न मिला था। परन्तु आरोग्यप्रश्न करनेवाले भी जब आरोग्यका प्रश्न करते है तब शरीरकाही तो आरोग्य पूछते हैं ? अन्तरके आरोग्यको पूछनेवाले कितने होते है ? जगतमें वैद्यरत्नोंने जो दुकानें खोली है वे भी तो शरीरके आरोग्यकी ही हैं। आत्माके आरोग्यकी औषधियोंके सच्चे धन्वन्तरी कब अवतीर्ण होंगे ? ए प्रभो।

मानवोंकी महापाठशाला में मानसशास्त्र विकसित होता है परन्तु मनके निदान, चिकित्सा, शस्त्रविद्या, औषधिशास्त्र और आरोग्यसंहिता हैं कहा? मनकी चरकाचार्या और सुश्रुताचार्या तो उषाकी वे अनुभवी सखिया थीं कि जिन्होंने उषाको अश्वत्थ छायामें मेरे करमंडलमें भेज दिया था।

परन्तु इस छायाद्वीप में उषाके आने की घडी से ही हमारे कृष्णपक्ष का प्रारम्भ हो गया।

लोक स्वय चाहते हैं और दूसरोंको चाहने नहीं देते, लोक स्वयं जो करते है वही दूसरे को क्यों नहीं करने देते?

इस अश्वत्थ के छायासरोवर के तट पर जो झरोका था उस पर उषाका बडा भाई और उसके तीन मित्र थे। चादनी ओढी हुई सहेलियोंपर उन्होंने अन्तरके उमरेके ऐसी पुष्पवृष्टि की थी। परन्तु उषापर जो मैंने अन्तर्वृष्टि की उसे वे देख करभी न देखे सके—उन्हें वह अच्छी न लगी।

स्वय उन्होंने नयनों से नयन मिलाये और हँसे—आठकी जगह सोलह आखें कीं परन्तु उषाने दो की जगह चार आखे की सो अच्छा न लगा।

दूसरे दिन प्रातःकाल में भाईने अपनी कथा न कही परन्तु बहनकी कहानी सुना दी। पिताको अपना या पुत्रका यौवनयुग याद न आया केवल पुत्री ही यौवनदोषसे दूषित जान पड़ी।

आधी बात कहने से पृथ्वीमें जितने अनर्थ होते हे उतने पूरी बात कहनेसे नहीं होते।

इसमें भाईको पराये का पाप जान पडा, पिताको भूल जान पडी और माताको उछाछलापन जान पड़ा। ये सब होनेपर भी इस कृष्णपक्षकी प्रतिपदाको उषाको आज्ञा दी गई कि वह देवदर्शनको या घर से बहार जाया करे तब मा या बडी बहनके साथ जाया करे।

कितनीही आज्ञायें तो ऐसी होती है न कि जो तोडने के लिये ही दी जाती हैं ? लोग तोड देंगे ऐसा मान कर ही तो कितने ही खेतों की बाडें विशेष दृढ रची जाती है !

उषा के आजतक नाथ न थी सो अब लगाई जाने लगी । परन्तु गाय या बछियाके कभी नाथ देखी या सुनी है ?

प्रतिपदाकी साझको माताकी अगुली पकडे हुए—मानो ससारमें माता ही चलाती हो इसतरह—उषा देवदर्शन के लिये आई । मै देव-मन्दिरमें ही था और मैने धेनु और धेनुवत्सा को मन्दिरकी सीढियोंपर चढते हुए देखा । बछडी के नयन बछडी के चरणोंकी तरहही धेनुके पीछे ही चलते थे । परन्तु यौवनके—और निर्दोष यौवनके कितनोंने और कितनी लगामें लगाई है !

देवदर्शनको उषा गई । वहां देवमूर्तिमें देव न देख पडे कि तुरन्त उसकी आखें झूलेपर चढीं । देवमदिर के मठ का झोला खाकर मुझपर उतरीं । आज इनमें न था उल्लास और न था प्रोत्साहन केवल प्रश्न और चिन्तनका भार विराज रहा था ।

बिजली की चमक के ऐसी वह छिनभर चमक कर रह गई । बादल कीसी पलकों में वह प्रकाश छुप गया ।

यौवन का झरा उछाले लेने लगे तब बडों को चाहिये कि उसमें निर्मली छांटे और उसे सरोवरकी और बहने दें । यह पातालझरा सदा का सजीवन है और जगतके कल्याण के लिये जगके कल्याणनिधा-नको प्रकट करना है ।

मेरे और उषाके यौवनझर प्रकट हुए थे और उसके प्रपात गडगडा-ते थे । परन्तु ऊपर अंधेरे पक्षकी अंधेरी छाया तिरमिराती थी ।

उषा गई और उसके व मेरे बीचमें अदृष्ट वातावरणके समान किसी के बिछाये हुए अन्तराय जान पडे ।

दूसरे दिन प्रातःकालमें नदी से न्हाआनेके बाद स्नेहभरा हाथ मेरे माथे पर फेरते–फेरते माताने कहा बेटा! दुनियाके मुहपर भी कोई लगाम है? जगत तो बिल्कुल झूठा है। परन्तु किसीको हमारे पीछे घूमना चाहिये या हमें ही किसीके पीछे घूमना चाहिये? मेरे कान्ह कुवरके लिये तो भावमयी राधा रानी लावेंगे–आसमानसे चन्द्रमाको पकड कर उतारेंगे। मैं तो सब छोकरियोंके छकेले पनको जानती हू।

मेरी माता उत्तर न मागा करती थी, आज्ञाही देती थी, अतएव मुझे कुछ कहना न था।

कौन ब्राह्मण ऐसा है जो ब्रह्ममुहूर्तका भोगी होकर उषाके दर्शनका अभागी रहे? मेरे भी ऐसा ही होताथा। जहा जाऊ वहा प्रकाशकी पुतली के ऐसी उषा साम्हने ही मिलती थी।

दुहाई देकर होते हुए प्रभातोंको कितनोंने रोका है?

उस दिन प्रभातमें उषाके शिरपर मन्दिरके कलशके ऐसा जलका कुम्भ सुहा रहा था। परन्तु केशकलाप सवारा हुआ न होकर बिखर रहा था। तेज के पखे की ऐसी ओढनीके किनारे मेंसे दो–एक काली लटें बाहर फरफरा रही थीं। पहले वह लीलामयी गति से रास्तेभर थनथनाती आतीजाती थी। विचारके भारसे रहित वह गति जाती रही, आज चिन्तनाकी परछाहीं उसके पैरोंमें पडती जान पडती थी। बडी बहन के साथही वह पानी भरकर गई। उसके दृष्टि किरणने मात्र पानी भरते भरते क्षितिज मडल की यात्रा कर ली। खिरती तारिकाकी इस ज्योतिने मुझे छिन–आधी छिन तक दरस दिखाया।

देखनेमें उषा आज्ञापालक पुत्री थी, कहागिरी कन्या थी। परन्तु माता पिता ऐसी आज्ञा क्यों देते होंगे जो पाली न जा सके?

मनुष्य भूल जाते है कि पुरुष की देवी स्त्री है और स्त्रीका देव पुरुष है। दुहाई के अन्तराय डालोगे तोभी उनके अन्तर एक दूसरेसे मिलेंगे,

उल्लसित होंगे और आपसमें पूजा करेंगे। नरनारीके तत्त्व अन्योन्याश्रयी हैं। अन्योन्य के लिये है। इन लोहचुम्बकोंको अलग रखनेसे आकर्षण अस्त न होगा। जब ये योग पायगा तभी स्थितिस्थापकता का साम्य और सौमनस्य सधेगा। जगतके बने और कल्पना किये सब इतिहास साख देते है कि वियोगसे योगकी वाञ्छा शान्त नहीं होती।

यह एक सोता है कि जिसमेंसे अनेक निर्झर बहते हैं। ये सब निर्झर सागरमें जाकर सगम न पावें तबतक प्रवाह, प्रपात, नदी, नद, महानद आदि अनेक रूप लेकर उधरकी ओर ही बहेंगे जहा सबको जीवनके सगम विश्राम मिलते है । जो जल सरोवरके ऐसे जगतके तटपर अकेले खडे है वे भी अन्तमें बाफ बनकर उडते है और जगतके शिखरपर सगम पाते है कि जहा से उनका जन्म हुआ था।

स्त्रीपुरुष के अन्तरङ्गोंकी भी कुछ ऐसी ही कथा है।

हमारा कृष्णपक्ष बढता ही गया। उषाके कपोलपरका गोदना प्रतिदिन विशेष विशेष काला होता गया । उसके मुख पर गोपीका रग उड उड कर कृष्णका रग होने लगा। यह रग छाया मुझे कहती थी कि गोपिका अपने कृष्णचिन्तनसे कृष्णमय होती थीं।

मोर की किलङ्गी भी कभी गहरी हो जाती है। उषाकी भँवोंके बीच का गोदना भी ऐसेही श्याम होताथा।

चन्द्रकी कलाभी दिन दिन कम होती गई और रातें अन्धेरी होती गई। सावनभादोंकी झडकी भाति आसोज में भी हमारे नेत्रोंसे कभी कभी झड लगती थी। उषाकी ओढनीके ऐसी बारीक और गोल रेखाकी काली लकीर पलकोंके चारों ओर बनती जाती थी। कृष्ण महाराजने राधाजीके मनो अपनेही लोचन लगाना न प्रारम्भ किया हो।

चन्द्रिका ने मेरे मुखपर के उचाटके शब्द पढ लिये थे । वह पूछा करती थी भैया क्या है? मै कहता, योंही कुछ नहीं मेरे ऐसा तेरे न

होना ! परन्तु वह समझ गई कि अन्तरकी आगके धुए की रज मेरे मुख पर फैलने लगी है।

रात को मेरे हृदयमें भूकम्प के ऐसा कुछ होता था और बार बार मैं नींदसे जग पडता था। ऑखें घूमती और सारे विश्व को घूमता हुआ देखती थीं।

ऐसे करते–करते आसोज का कृष्णपक्ष बीता।

कोई कहेगा कि प्रकृतिका रग कैसा है ? प्रभु कृष्ण रग में अवतीर्ण हुए थे और जगतके छत्रके-से बादलोंकाभी रग श्याम ही है। प्रकृतिमें अवतार लेकर परमात्मा प्रकृतिके रग में ही रगाते है और आत्मा जन्म लेता है तब शरीरसे ही उसके दर्शन होते है।

अन्तर में अग्नि प्रकट होता है तब वदनकी धूमरजसेही जाना जाता है। मुझे जान पडा कि मेरे हृदयके ऐसा ही ज्वालामुखी उषाके हृदय में भी धधक रहा है और उसके धूमकी रज हमारे मुखपत्र पर चढ रही है। इतना ही क्यों वही प्राकृत रगसे मुखको रग रही है।

ये सब कुछ होने पर भी क्या यह नहीं जान पडता कि दिन और रात दोनों प्रकृति के बालक है ? राधा और कृष्ण दोनों प्राकृतिक रस-मूर्तियां है ? धोले पर काला करके वेदऋचायें लिखी गई है, और जगतका इतिहास सारा-कासारा ऐसे ही लिखा जायगा ? तेज और अन्धकार–दोनोंके क्या ये आचरण नहीं हैं ?

इस एकादशीको मेरे लिये तो स्वर्गके द्वार खुले हुए नहीं थे देव-मदिरमें उषाके दर्शन नहीं हुए और देवीके बिना देवमन्दिर सूनेसे जान पडे। सुना कि उषाको ज्वर आगया है।

चन्द्रिका एक दिन गा रही थी और उसके उसगीत को बारबार गा कर मै उसे चिढाता था। आज वह मुझे चिढाने को आई। वह अजीब चालसे चल कर मुझे बेहदतग करने को करने लगी–तग करने लगी–

लकडी जल कोला भये कोलाजल भइ राख
मैं विरहा ऐसी जली कोले रही न राख

हम दोनों भाई बहन दोनों को चिढाते थे परन्तु इकतारके दो तारोंके समान हमारे अनुकम्प थे।

जिस आग से वह दाझी थी उसकी ज्वालाओंमें मैं आज जल रहा था–सिलग रहा था।

दुनियाको चतुर कितनीही बार गाते है कि —

"दिलकी न कहना चाहिये दिलको न देना चाहिये"

परन्तु क्या इस प्रकार गान करनेवाले सच्चे है ? दिलके दिलाराम जगह जगह नहीं है, बाजार चौराहोंमें नहीं है। परन्तु जिस मनुष्यका दिलाराम न हो उसके लिये इस प्रकारकी शङ्का करना कुछ अस्थानपर न होगा कि उसके दिलभी है या नहीं।

चन्द्रिका और मैं एक दूसरेको दिलासा देने वाले थे। सिंहबारस के दिन उषाका सिंह चित्रित करनेको चन्द्रिका उषाके घर गई। मैंने कहा कि सिंहीको चित्रित करनेकी आवश्यकता ? चन्द्रिका बोल उठी कि लोकाचार है पालेबिना चल नहीं सकता।

उषाका सिंह बनाने को जाते हुए स्वय चन्द्रिका ही सिंही बनकर लौटी। बात यह बनी कि —

उषाकी हवेलीपर जब चन्द्रिका गई तब उषाकी माता उषाके सिर-पर गुलाब जलके पोते रखती थी और इस बातका यत्नकर रही थी कि उषाके दिमागमें चढी हुई गरमी कम होकर यढाई आजाय। चन्द्रिका को देखतेही उषा बैठी हो गई और बातें करना शुरू किया। मातानें उसे नाहीं की परन्तु उसने कुछ परवा न की। हमारे घरकी बछडी भी कभी कभी तूफान मचाती है और माकी नहीं मानती। परिणामके निवारणके लिये कारणके निवारण करनेकी चतुराईसे उषाकी माताने

चन्द्रिकासे कहा बेटा ? तू आती है और उषा पागलसी हो जाती है । तुझे क्या उषाको पागल करना है ? पागलपन घर कर बैठेगा तो ?

चन्द्रिका उठी । कुछ कुछ बातें करने के लिये गई थी वे सब-की-सब बातें उसने अन्तर-की-अन्तरमें रहने दीं । वह पीछी लौटी । बाहर निकलते-निकलते इस चिन्तनमूर्च्छित बाला के ठेस लगी । इतनेमें खिडकी से उषाके छोटे भाईने कहा सदाके लिये रहने को आओ तो मासे कहूं । चन्द्रिकाके कानोंमें यह बात गई उसने ऊचे देखा । चन्द्रिका काही सिंह चित्रित हुआ और वह सिंही के समान गरजी । लोचन और मुखसे भाले मारती हुई बोली देखलेना तेरे यहासेही कोई मेरे भाईके यहा सदा रहनेके लिये आवेगा ?

इसी दिनसे चन्द्रिका और उषाके भाईमें आपसमें ममता की अटस पड गई । इस सग्राम के सेनानी थे और, और इस रणक्षेत्र के सुखदुख भोगी थे मैं और उषा !

विश्वव्यवस्थामें निर्मळ न्याय है या नहीं ?

त्रयोदशीके लक्ष्मीपूजन में मैंने तो उषालक्ष्मी का पूजन किया और चाहा कि वह सदा घरवासा कर मेरे घरमें रहे । धूलि और बाफ के गुब्बार इस महीने में ज्योत्स्नाकी वर्षाको नहीं रोकते और न तिमिर-वर्षा कोही रोकते है । दूसरी ऋतुओंमें तेज और अन्धेरेके भी मैल चढे होते हैं । शरदऋतुमें जैसे तेज स्वच्छ श्वेत और निर्मल अवतीर्ण होते है वैसे ही अन्धकारभी बिल्कुल काले भवर उतरते हैं । पूर्णिमाके दिन अपूर्वतासे प्रकट हुआ मेरे हृदयका प्रकाश अमाके दिन अपूर्वतासेही अस्त होगया ।

वर्षका अन्त आता गया वैसे वैसे कृष्णपक्षभी भीषण रूप धारण करतायगा । जाते-जाते वर्ष अन्धकारके भण्डार खोल कर ही न जारहा हो इसतरह रातें ज्यादा-से-ज्यादा घोर और अन्धेरी होती चलीं ।

जगतभरके सारे–के–सारे पाप प्रकट होगये हों इसतरह तिमिरवन विक-राल और भयानक भासने लगा।

चतुर्दशीके दिन दुनियाने हनुमानजीको खीरबड़ेका भोग दिया और प्रसाद लिया। परन्तु हनुमानजीकी वाक्पटुता, सेवा भक्ति, ब्रह्म-चर्य आदि गुणोंका प्रसाद लेन को जगत् कुछ बचा हुआ न था। वर्ष-भरकी अन्धेरी–से–अन्धेरी इस काजलके ऐसी काली रातको अन्धेरेके उपासकोंने अन्धकारके देवदेवोंकी उपासना की और मारणमन्त्र साधे।

मैंने तो उस प्रकाशकी प्रार्थना की कि जो जगतमें आजभी अद्वि-तीय है।

बहते हुए पानीके बहावमें तैरनेकोभी कला की आवश्यकता है फिर साम्हे पूरमें तैरनेको कला और वीरता दोनोंकी आवश्यकता हो तो कोई आश्चर्य नहीं। तैरना सीखे बाद बहुत करके पूरमें तैरनेकी ही मुझे कुटेव थी। भरे पूरमें मै कूदता साम्ही धारों चढता भवरोंमें गोते लगाता और भवरों म जानेकी हिम्मत करता। जगत के सब योद्धाओंको ऐसे ही जग जीतने पडते है।

व्यापारी लोगोंने अपने सालभर के हिसाब किताब देखेभाले और अपने हानिलाभ को जाना, परन्तु जिन्दगीके व्यापार का हिसाब किताब किसीने ही किया होगा मन्दिरोंमें उत्सव हुए। रामचन्द्रजीके अयोध्यानगरीमे प्रवेश करनेकी वार्षिक तिथि सबने उत्साह पूर्वक मनाई। राम मन्दिरों में गाया गया कि—

"अवध मे अनन्द भयो
घर आये सीताराम"

परन्तु मेरे विरह का वनवास तो अभी पूरा न हुआथा
और अमावास्याये मासिक होतीं है परन्तु यह अमावास्या तो वार्षिक

थी। बारहों कृष्णपक्षों के अन्धकारकी पूरहों इसतरह अन्धकार के बारहों मेघ उस रात को उलटे थे। लोकमन्दिर और देव मन्दिरमें प्रकाशती हुई दीपमाला ऐसी जान पडती थी कि कहींपर अन्धेरे को उज्वल कररही हो और कहींपर अन्धेरेको दरसा रही हो ! ताराओंके चारों ओर जैसे अभ्र घूमते हैं वैसे ही दीपकोंके आसपास अन्धकार की झालरें झूम रहीथीं, तेज और अन्धकारके नित्यसंग्राममें आजकी रात को तो तेज-सेना हारती हुईसी जान पडती थी।

मेरे अन्तरमें भी ऐसा ही कुछ था। आशा–निराशाके रणसंग्राम में आशाका पराजय होता–सा जान पडा। निराशाके कृष्ण पक्षकी अन्तिम–महाघोर–अन्धकारवाली अमावस्या विजयिनी होती हुई–सी जान पड़ी।

एक रात मुझे जब ऐसी काली और लम्बी जान पड़ी तब जहा छहमहीने की अखड रातके अनन्त–से अन्धकारके महावन फैलते होंगे वहां क्या होता होगा ? आकाशके अन्तकी तरह रातके भी अन्त न मिले ऐसी स्थिति कल्पनामें ला सकते हो ?

परन्तु वहां पर पो फटे और दिन उगे तब छहमहीने दिन भी तपता है इसके प्रकाश का अन्त भी दुर्गम लगता है !

नगरमें पटाखे छूट रहेथे। उस प्रत्येक बन्दूककी गोली मेरे हृदयमें आकर लगती थीं। टोटे की तोपें दिलके पहाडको कँपाती थीं। कोई उटगी छछून्दर और बन्दर छोडताथा जो रस्तेचलनेवालोंके पैरों में जाकर कूदाकूद मचा देते थे या हवेलियोंके झरोखोंपर जा बैठते थे। मेरे मनके मर्कट और लोचनके छछूदर बारबार उडकर उषाके झरोखेपर उडकर जा बैठतेथे।

अपने हृदयके महलमें रहनेवाली कोई कुमारिका राजमार्ग पर निकलती तो कितनेही तूफानी नवरगी महताबियों, फूलझाड़ियों, बिजलीके तारों के

प्रकाश कर उनके जगमग करते उजासमें दूरसेही सौन्दर्यज्योतिके दर्शन कर कराकर शरमानेके लिये प्रयत्न करते थे। लज्जाके बारीक घूंघट, चन्द्रपर चलती हुई हलकीसी बदलीके समान इन मुग्धाओंके वदनचन्द्रपर छाते और हट जाते थे।

रसदर्शन की मेरी आकांक्षा पूर्ण होती हो तो मै अपनी दोनों आखोंकी रंग बिरंगी महताबें रातभर जलाऊ, छिनाछिनमें पलटते हुए प्रकाशकी रंगत दिखाऊ और कल्पनाके इन्द्रचापकी छटा नगरभरमें फैलाऊ। मेरे हृदयमें इस प्रकार का उल्लास था परन्तु खानोंमें क्रीचादी सोना और हीरा माणिक की लताओंकीसी मेरी कल्पनालता अमीतो गहरे अंधेरेमें ही चमकती और फूल छोडरही थी।

लोक हवाइया चला रहेथे मानो आकाशमें प्रकाशकी कमी मान कर अन्धकारकी घटा को प्रकाशित करनेका यत्न ही न कर रहें हों! मेरेभी शेखचिल्लीके ऐसे विचारोंकी हवाइया आत्माके आकाशके अंधेरेका प्रकाश करनेके लिये चलती थीं परतु व्यर्थ! आदित्यावली जिसे प्रकाशित न करसकी उस आकाशको पृथ्वीसे भेजे गये क्षणिक दीपक क्या प्रकाशित करेंगे?

नगरके सराफेके चौकमें एक खडी हुई छोटीसी दीपमाला जल रही थी, इसके साम्हने चारोंओर की दूकानोंके जगमग करते हुए प्रकाशभी मन्द पडते थे मानो विजलीका माणिक्यथंभ नगरके बीचमें ही न गाड़ा हो! मुझे जान पडा कि उषाके एकएक अवयवमें ज्वाला प्रकटी है और नगरके नग (रत्न) के ऐसे सराफेके भरे चोकमें वह नगरके सारे महाजनों और सेठ सहूकारोंको बोध देती हुई सौन्दर्यदेवी सहजभावमें प्रकट हुई अग्निज्वालामें जलती, सती ही न हो रही हो!

उस मझरातको मेरी आंखोंमें पूर उभर आया और नयनकी बदलीसे एक सड़की बरसी परन्तु इससे हृदयका भार हलका न हुआ। आंखोंमें

अँधेरी छाई थी वेह कुछ ढली, निराशाकी पत्तिया कुछ कोमल हुई परन्तु कृष्ण पक्षका मेघाडम्बर दूर न हुआ।

निद्रामें स्वप्नमें भी इस सराफेके चौककी सो शिखावाली दीपमालिकाकी जलती हुई दीवट मुझे देख पडी। पानसे भी फूल विशेष ऐसे दूधिया फूलोंवाला झींझींका वृक्ष तो देखा है न? इन पत्तोंकी वाडिया बना कर डाल डालपर औंधी लटकादी और एकदम जलादी हों और इसतरह यह फूलाहुआ बालवृक्ष जल रहा हो इस प्रकार का मुझे स्वप्न हुआ फूलझिरिणीचकरीका छोटासा सरव अग्निके फूल बिखेर रहा हो इस प्रकार चिनगारियां उडतीं थीं और मुझे डरा रही थीं।

आयुष्यकी ऐसी निराशाकी अमावास्या किसीको भी न बीते! नवीन वर्षका प्रभात उगा, परन्तु वह कितनेके अन्तरमें? पूर्वके मंडपमें रंगभरी उषा प्रकटी, परन्तु वह मेरी उषा न थी, और न मेरे लिये ही थी।

बालक सबरस बेच रहे थे। बालक बालकके समान ही समझ सकते हैं न! वस्तु विनाकी परछाई के ऐसे रीतिरिवाज अब है किस कामके? जीवरहित शवके ऐसे वे नहीं है? प्रजाजन! देवहीन मन्दिरों में दर्शन करने जाओगे?

परन्तु ससारजीवनकी यह मौत है या मूर्च्छा? ससारकी मूर्च्छा होगी तो हट जायगी। देखो! देखो! अब इसका कोई कोई अङ्ग हिल-सा रहा है।

सब रस बिकते थे उस प्रभातमें मुझे एकभी रस नहीं मिलता था। रस बिकते हुए मिलते होते तो जगत्में कोईभी रसका कगाल न रहता।

लोक बिकते हुए लेते है वे पुण्य नहीं लेते रसाभासके पाप इकठे करते हैं।

टोटोंकी तोपें चला कर बच्चोंने जगत को जाहिर किया कि नये वर्ष का प्रभात हुआ है। देवमन्दिरों में मङ्गला आरातियोंकी

ज्योति हुई। विश्वको बधाई देता हुआ वहा का घटारव का गुजार इस प्रभात को औरही मधुर भविष्य भास रहाथा।

उमग और उत्साह की प्रभाती गाती गाती मेरी माता उठी और चौक में दीपक रक्खे मानो नये वर्ष की ज्योति हमारे द्वारपर आज आ न विराजी हो!

परतु मेरे हृदय के चौक में तो न कोई बधाई की हवा आई और न उत्साहके प्रकाश!

प्रात काल में स्वच्छ वस्त्र पहन कर लोकसमूह घामघूम कर रहा था! कोई कोई साधुजनों ने अन्तर के वस्त्र भी धुले हुए और स्वच्छ सजे थे। परन्तु इस आशाभरे सौभाग्यरगी प्रभाप्रोज्वल प्रभातमेंभी मेरे अन्तरकी घटा तो न फटी ही और न हटी ही। मैंने तो इस कृष्णपक्ष की काली कबली ही ओढ रक्खी थी।

चद्रिका घरघर मिठाई दे आई, मन्दिर मान्दिरके दर्शन कर आई और आकर मुझसे कहा वीर, आज के प्रभात के ऐसा तेरा भाग्य उज्ज्वल है।

इस बैठते वर्षकी दो पहरी को मैंने उषाकी माताको अन्नकोट के दर्शन करनेको जाते हुए देखा किन्तु साथमें उषा न देखी। मुझे जान पड़ा कि यह कुटुम्ब कुटुम्बलक्ष्मीकोही न भूल आया हो!

इसप्रकारके अपशकुनवाला मेरा नया वर्ष बैठा परन्तु शकुनावलीके सूक्त, वेदसूक्तोंके समान, क्या सच्चेही हैं?

रातमें मैं हिंदलोट खाट पर झोले खाता हुआ पड़ा था। अन्धकारकी हिंदलोट खाटमें बाहर ब्रह्माण्ड झोले खा रहा था। हृदयमें इस कृष्णपक्षकी तरङ्गें उछल रही थीं और जीभ नाटकका यह गीत गुनगुना रही थी—

'झूले सम हे सखी ! हियामोरा झोले राय–राय, महासागर के बड़े बड़े मौजोंमें नाव झूले ऐसी मेरे हृदयकी नाव हिलडुल रही थी।

दूजके दिन प्रभातमें केशरकुकुम और अक्षतका थाल लेकर चन्द्रिका मेरे कमरेमें आई। मेरे तिलक किया और कहा: युगयुग पहले आजके दिन रघुकुलमानको राजसिंहासनपर पधरा कर शान्ता बहनने तिलक कियाथा। तेराभी सौभाग्य सूर्यवंशियोके सूरजके समान ही तेजस्वी है। ऐसेही है–अरुणकी रेखाके ऐसे -बहन के तिलक भाईके ललाटपर आजभी। भविष्यवाणी कहती हू तू मुझे अपनी पैगम्बरानी मानना भला !

ऐसे मधुर मधुर पैगम्बर और पैगम्बरानी ससार के सब सन्तानोको प्राप्त होवें !

परन्तु मेरी निराशाका कृष्णपक्ष एक पखवाडेका ही न था। इस अधकारके काले और अभेद्य परदे, आसमानके समान गहनताके रगसे रँगे हुए थे और सारी दिशाओंको रोक कर लटक रहे थे।

इतने इतने विरहके युग विश्वमें व्यतीत हुए, और इतने इतने बिर-हीजन विराटके मडपमें फूले हुए कुम्हाला गये तोभी विरहकी उक्तियोंको अतिशयोक्ति माननेवाले मानवी अबतक मौजूद है ? सम्भव है कि उन्हें इसका अनुभवही न हुआ हो। या विरहके गहरे पानीमें डुबकी ही न लगाई हो।

शियालेकी लम्बी राते आई। मेरे हृदयमेंभी बात उठी कि मैं अपने हृदयकी बातोंको लिखू। पहले-पहलका प्रेमपत्र लिखते लिखते मैंने कितनेकितने कागज और कलम पलटे ? मैने पाचवीं कलम और छट्ठे कागजपर उसे पूर्ण किया था। विरहसम्बन्धी हृदयके उभरोंको लिखते हुएभी, ठीक ऐसी ही तो नहीं, परन्तु कुछ ऐसी ही मेरी हालत हुई थी।

कागज और कलम लेकर बैठा तो पहला प्रश्न तो यही उठा कि उपन्यास लिखूं या काव्य ? जगत्के कवियोंकी जन्मपत्रियां मिलें तो देखना बहुतसोंकी जन्मतिथिया विरहपक्षमें ही होती हैं।

हमारे प्रेमविरहको अमर करनेकी लालसासे और जगतकी कवितामें इस ज्वालाकी लपटें यथार्थ रूपसे अभीतक अवतीर्ण नहीं हुई है इस अचलाचल मानता से मैने कविता लिखनेका निर्णय तो सुगमतासे कर लिया। परन्तु महाकाव्य लिखना या खंड काव्य? हाफिज की तरह गजल की बुलबुल बुलवाऊ या अमरु के समान कोकिलकी सी मीठी मीठी अलग अलग कूक करू? इसका निर्णय तो न उस समय हुआ और न अब ही होता है।

हमारा प्रेमविरह अमर न रहा और इससे अमर हुवाभी नहीं! आज मै अपनी इस नोंध पुस्तकको देखता हू तो मुझे—सच कहता हू आप हँसियेगा नहीं—ऐसा खियाल उठता है कि कुछ विधाताके ऐसेही विधान होंगे कि जगतमेंका सर्वोत्तम काव्य-प्रेमकाव्य लिखना बाकी रह जाय!

उषा कहती है कि जीवन ही सर्वोत्तम काव्य है यदि लिखना आता हो तो!

परन्तु इस शियालेकी लम्बी विरहरजनियों में तो मै लिखेही जाता या नोंध कियेही जाता था रातोंकी रातें जगता हुआ कल्पनातरंगोंके गर्वबचन, टपकाये ही जाता था, और दलपतरामकी अतिशयोक्ति गुन-गुनाता-गुनगुनाता सच्ची बनाये ही जाता था—

लिखलिख कागज लेखिनी मेरी
घिस घिस जाती है सारी।

पृथ्वी चलती ही रहती है मै लिखताही रहता था! अद्भुत आनन्द और आश्चर्य से चन्द्रिका बाचती थी। जहा न समझती वहा बुद्धि-प्रगल्भता, अगोचर गहनता और अद्भुतत्त्व मानती थी। कुछ समझा न समझा उषाको पहुंचा देती थी। उषा आज कहती है कि हमारे दीर्घ कृष्णपक्षमें यह प्रेमसन्देशही मेरा और उसकाभी जीवनचन्द्र था।

प्रकरण ९ वा

चिरकालके भेद

ये भेद चिरकालके हे । देह और देही के इतने प्राचीन, सृष्टि और सृजनशक्ति के इतने गहन और सारे विश्वको गूथ रखने वाले महागुरुत्वाकर्षण के इतने प्रबल और सर्व व्यापी ये नरनारीके गुरुत्वाकर्षण के भेद है ।

तत्वशोधक ब्रह्मके विषयमें 'नेति नेति' कह कर विरत हो जाते है । तत्व मीमासकों से तो ब्रह्मकी प्रत्येक ब्रह्मांडलीला भी 'नेति नेति' का ही उच्चारण करवाती है।आज तक कोई ऐसा विद्यावाचस्पति जनमा नहीं हे कि जो ब्रह्मका या ब्रह्माण्डलीला का पूरे तोर पर वाणीसे वर्णन कर दे ।

मनुष्यजाति के जन्मके साथ ही जन्मे हुए इस भेद के इतिहास आसमान के गड्ढेमें ऊंडे-से-ऊंडे गड हुए है । वेदकी ऋचायें प्रगट हुई तभी से-उससे पहले से ही इन भेदों को देखने और खोलने के लिये कविदार्शनिकों का यत्न हो रहा है ।

कोई समझाओगे कि ये भेद हैं क्या ? सब इसका अनुभव करते है परन्तु अनुभव मात्र क्या कभी वाणी मे पूरे तोर पर वर्णन हुए है ?

रसके ये आश्चर्य या ये आकर्षण, सौन्दर्य क पूज्यभाव या वत्सलता, रसोन्मत्तता या स्नेहावतार, आदर्शभावना के अगोचर ये नृत्य या आदर्शभावनामें निरन्तर रहते हुए ये करुण बीजाङ्कुर चन्द्रकी कलाओ के समान स्नेहकलाओंकी ये सब गहन भेदावली, क्या है ? इस स्नेहप्राप्तिके रसानन्द कैसे हैं ? इन रसिक प्रश्नों के हार्दभेदी मर्मज्ञ उत्तर इतने सहज नहीं है !

आत्मा और परमाके कोई नास्तिक कहते हैं कि स्नेह तो देहवासना है। मेरी इस स्नेहकथाको कोई वाचो तो वाचनेवाले महाशयो! वांचते वाचते विचारना। जगतके शंकर हो कि पार्वती-जो वाच रहे हो वही-वाच विचार कर कहो कि वह महाज्योति मुझ में या आपमें जब प्रकट हुई तब क्या केवल देहवासना थी? शवके स्नेह किसीको हुए है? मिसरके किसी मुसाफिर को शवका मोह हुआ होगा या शवके साथ उसने लग्न किया होगा?

एक दिन परम एकान्त था और वाचक! आप और प्रियजन उस दिन परम एकान्तमें थे वैसेही उषा और मैं दोनों अकेले ही थे और एक दूसरेके नयनोंके अतल जलकी ओर देख रहेथे। इस गहराई की ऊंडी-से-ऊंडी गुहाओंको पारकर हम कुछ खोज रहे थे जो बहुत सों को मिला है। हमारे गुरुत्वाकर्षणका यह महायोग था परन्तु देहवासनाकी तो इसमें गन्धभी न थी। देहयोगको ही स्नेह कहनेवाले स्नेहशास्त्रके चार्वाक क्या विप्रलम्भशृंगारकी ऋतुको या इस ऋतुके रसफल के ऐसे परम स्नेहकाव्योंको स्नेहहीन कहेंगे? संभोग शृङ्गारही क्या स्नेहका दिन है? और सब क्या अंधेरी रातें ही हैं? स्मरणके सगी क्या स्नेहयोगी नहीं? देह मिलो या न मिलो ऐसे उद्गाता क्या स्नेहके सद्भक्त नहीं? सब अनङ्गके व्रती क्या अङ्गको ही चाहेंगे? अमूर्तकी पूजा क्या बिल्कुल खोटी है? अनवतारी के उपासक क्या प्रभुके उपासक नहीं?

प्रियजन के महलकी बारी में जिस दिन तुझे प्रियवाचक! प्रियदर्शन हुए और दर्शनसमाधि लगी उस समय तुझे प्रिय-भावना हुई थी या बारीकी भावना?

देवमन्दिरमें इस सिंहासनपर जैसे देवमूर्ति विराजमान होती है वैसेही प्रियजनके देह-सिंहासनपर इस आत्मज्योतिका अखण्ड दीपक दमकता

है। देवमंदिरमें इस सिंहासनके दर्शनके लिये जाते हो या सिंहासन-वासी इस देवज्योतिके ?

मनुष्य वस्त्रोंसे जैसे देहको ढँकता है वैसेही सरजनहारने देहीको देहसे ढँका है। प्रियजन प्रियतमको चाहते हैं या प्रियतमके वस्त्रोंको ? कौन कहेगा कि यह महावाञ्छा वस्त्रोंकी है ? कौन कहेगा कि प्रियजन प्रियतमके वस्त्रोंकी अवगणना करते हैं ? कौन कहेगा कि प्रियतमके परिधानके पदत्रय रसरहस्यके गभीर मन्त्रनहीं सुनाते ? कौन कहेगा कि प्रियजन के परिधानके रगरूप परिमलमें प्रियजन रससन्देश नहीं पढते विराट का वर्णन करते हुए द्वैपायन व्यासभगवानने गाया है कि—

दिव्यमाल्याम्बरधर दिव्यगन्धानुलेपनम्
सर्वाश्चर्यमय देवमनन्त विश्वतोमुखम्

हा, प्रियतमके दिव्य अम्बर दिव्य मालायें और दिव्यगन्धलेपन' प्रियजनकी आखमें सब आश्चर्योंसे भरे हुए हैं । परन्तु प्रियतम तो स्वय -विराट, अनन्त, विश्वतोमुख है। प्रियजन उसी देवकी वाछा करता है।

कोई वस्त्रोंको नहीं चाहता, वस्त्रधारीको सब चाहते हैं कोई देह को नहीं चाहता देहधारीको सब चाहते हैं।

अदृश्य या दृश्य रूपसे देव जहा पर न हो ऐसे देवशून्य मन्दिरमें देवभक्ति करने को कितने जाते हैं ? भक्त, मन्दिरके सौन्दर्यकी पूजा करते हैं या मन्दिरवासी देवके सौन्दर्यकी ?

अन्नके विना दिन व्यतीत हो सकते हैं, पानीके बिनाभी घटे चल सकते हैं, श्वासोच्छ्वासके बिनाभी मिनटों तक रह सकते हैं परन्तु हृदय-चेतनाके विना पलक भरभी नहीं जी सकते, जीवनके समानही स्नेह-जीवनकी भी घटना है। हृदयचेतना ही उसका अमर चेतनतत्त्व है।

परन्तु परमेश्वरने ही सृष्टिमें आत्माको शरीरविहीन न बनाया, और उसे देहीके लिये देहके आवरण अनावश्यक न जान पडे। जन्म-

भरके लिये त्याज्य न भासित हुए—तभीसे जगतने ठहराया कि देही और देहका नित्य योगही जिन्दगी है और नित्य वियोगही मृत्यु। मानवलोकके लिये प्रभुको आवश्यक जान पड़ा हुआ देहका अपरित्याग मनुष्यको आवश्यक लगा इसमें उसका क्या दोष ?

सृजनपरपराकी महागगाको प्रभुने जबसे शरीरके शिखरसे प्रकट की तभीसे उस पहाडके पत्थरभी पूजे जाने लगे। नया चेतन प्रकट करता हुआ ब्रह्माका सृजनस्रोत देहके सरोवरजलसे प्रभुने झरता हुआ बनाया तबसे गोमतीकी मिट्टीभी गोपीचन्दनके रूपमें वन्दना पाती हो गई।

प्रभुने मनुष्यको लोचन दिये तभीसे उसे मूर्तिपूजक बना दिया, पृथ्वीवासी सब-के-सब केवल चेतनज्योति नहीं है और न केवल दिव्य-चक्षु ही है। सामान्य रीतिसे यदि मनुष्य स्थल—चेतन दोनोंका उपासक हो तो ये उसके आजन्म प्राकृतिक सगरगके शिक्षण और प्रतिकरण ही है।

प्रकृतिके पटपर तेजछायाके रग भर कर ब्रह्माण्डका महाकाव्य परब्रह्म भूति-अक्षरोंसे लिखा गया तभीसे मनुष्योंमें मूर्तिपूजाका प्रारभ हुआ आर मनुष्य मूर्तिपूजक हो गया। जबतक भाव प्रदर्शनके लिये शब्दमाला आवश्यक है और शब्दमालाके लिये वर्ण मूर्तिया आवश्यक है, तबतक मनुष्य मूर्तिपूजक रहेगा। जबतक मनुष्यके आखें है तबतक वह चाहेगा कि अपनी भावना के प्रत्यक्ष दर्शन करे, और वह, क्या प्रभुभक्तिमें और क्या प्रेमभक्तिमें मूर्तिपूजा करेगा ही। पृथ्वीलोकमें मनुष्य के लिये अमूर्तपूजा और मूर्तिपूजा दोनों विधान है। मूर्तिपूजा की जड मनुष्योंकी देवप्रदत्त आखमें है। मूर्तिपूजाके ए मूर्तिभजको ! मूर्तियोंको तोडनेके पहले मनुष्योंकी आखों को फोडो। मानवजातिकी आखे फूट जाने पर मूर्तिके दर्शन की लालसाभी जगतसे उठ जायगी।

और ऐसा समझकर ही, सयमचक्रवर्ती योगीन्द्र सूरदास महाराजने तेजमणिके ऐसी दोनो कीकियोंका फोड दिया था कि आखोंकों जगद्दर्शनकी इच्छा ही न रहे।

पांच ज्ञानेन्द्रियोंके द्वारा मनुष्यको ज्ञानकी प्राप्ति होती है। अच्छा तो बतलाओगे कि कुछ लोग आखको झूटी क्यों कहते हो? नेत्रधर्म सच्चा है, तो दर्शनव्यापारभी सच्चा है, दर्शनव्यापार सच्चा है तो मूर्तिवाञ्छना भी सच्ची है। मूर्तिपूजाके मूल दर्शनेन्द्रियकी दर्शन भावना है। दर्शनेन्द्रियकी दर्शनभावना के इतने ही मूर्तिपूजाके भी आयुष्य है। प्रेमलक्षणाभक्तिके हम भक्तजनोंकी तो रसके रसिया दयाराम की भाति वाञ्छा और उपासना सब मूर्तिचन्द्रकी ही होती है।

सभी ठोर हरि आपके मेरा प्रिय इक ठोर
तुम रीझो लख चादनी मिल चन्द मनमोर

उषा मेरे जीवनका चन्द्र था और इस चन्द्रके चन्द्रामृत की मुझे चाह थी। क्या स्नेहमे और क्या ब्रह्माण्डमे—एकमेवाद्वितीय—ही परम सत्य है और चादनी के बदले चन्द्रपूजनके रसविधानों में यह महासिद्धान्तही चमकता है।

अनेकपतिविधान मानने वाले तो अब कोई होंगे तो ही होंगे परन्तु अनेकपत्नीविधानके मानने वाले तो अभी है। उपनिषद की हिमायत लेकर वे कहते है कि बाटनेसे कुछ कमी नहीं होती और पूर्णमेंसे पूर्ण लेनेसे पूर्णही शेष रहता है। वे कहते है कि दाशरथी स्मृतिमें अनेकपत्नीविधान की परवानगी है। सद्भाग्यसे इस स्मृतिके मुझे दर्शन नहीं हुए इसम मुझे तो, ऐसा जान पडता है कि अनेकपतिविधानके समान अनेक पत्नीविधान है। एक स्थानपर एक समयमें एकही वस्तु रह सकती है और एककालमें एक वस्तु एक कोही दी जा सकती है। व्रेहवारियोंके वस्तुविचारके

ये न्याय सिद्धान्त मुझे तो ठीक जान पडते है । एक होने परभी अन्य पति या पत्नी करने वाले स्नेह नहीं किन्तु किसी और ही वस्तुको देते लेते है सज्जनो ! क्या आपको ऐसा नहीं जान पडता ?

रसिकता के कलाविधायक गीतसे कानोंके द्वारा और चित्रसे नयनोंके द्वारा रसका उद्दीपन करते है । अमूर्तपूजाके पुजारी गानाचार्य सच्चे हैं और मूर्तिपूजाके पुजारी खोटे है ऐसा कहने वाला कोई रसमीमांसक अभीतक पैदा नहीं हुआ ! और कौन कहेगा कि ॐकारके उच्चारणकी वायु मूर्ति नहीं है ? भक्त ध्यानी जोगीजतीने ॐकारका भावोच्चारण कर वायुमूर्ति रची इसी लिए क्या उसकी ॐकार भावना को कोई असत्य कहेगा ?

कालीगेली उषाकी यह कविता लिखी इसीलिये मेरे उषाभाव खोटे यही बात हे न ? वाचक तुभी अपनी उषा की बात न कर, ओ ब्रह्म-कथाकार ! तेरी ब्रह्मकथा को भी रोक दे, नहीं तो भावोच्चारणसे वायु-मूर्तियां बन जॉयगी, बुद्धि बाहुल्य दिखलाते हमारे तरंगी मूर्तिभंजक तुम्हारे हृदयभावोंको मिथ्या कहेंगे और वायुमूर्तियोंको फोडनेके लिये ये गदाधर गदायें उठावेंगे ।

परब्रह्मने प्रकृतिका स्वांग लिया तभीसे परब्रह्मकी मूर्ति रचगई ब्रह्मने ब्रह्माण्डधारा तभीसे यह अडमूर्ति अवतीर्ण हुई । निरखना न निरखना यह प्रत्येक के नेत्रधर्मका प्रश्न हे ।

भक्तजनों की और योगीश्वरोंकी पञ्चेन्द्रिया प्रभुकी चाहना करती हैं और स्नेहयोगीन्द्रोंकी पांचों इन्द्रिया प्रियतमको चाहती है । प्रियतम के सौंदर्य के दर्शन नेत्र चाहते है, प्रियतम के गीतमाधुर्यकी कान को इच्छा होती है, प्रियतम के अधरामृतकी इच्छा जीभको होती हैं, घ्राणे-न्द्रिय प्रियतम के परमोत्कृष्ट गन्धकी वाञ्छा करती हैं, देह देहको चाहता है और आत्मा आत्मा को ! यह पूछिये कि कौन किसको नहीं चाहता ?

सब सबको चाहते हैं। मैं उषाका क्या नहीं चाहता ? मेरा क्या, उषाके किसको नहीं चाहता ? मेरा सब उषा के सबको चाहता है। यह पूर्ण है, ये पूर्ण है और पूर्ण के पूर्ण में मिलने से सब पूर्ण है।

वाचक ! धैर्य जरा धैर्य रखना । अभीतक इस भेदकी मूल भुलैया का छोटासा भी खुलासा नहीं हुआ है। रसयात्रामें थाक तो नहीं लगी ! गंगा उतर आये परन्तु महावन में तो अभी प्रवेश करना बाकी है।

देह और देही की रसमीमासा का यह एक प्रकरण है, और उन दोनोंमेंसे एक एक के कोट्यनुकोटि किरण के इतना भी लंबा नहीं है।

उषा को मेरी इंद्रिया चाहती है या इन एकादशेन्द्रियों के द्वारा मेरा आत्मा ? इन्द्रिया स्वतन्त्र व्यक्तिया हैं या किसी स्वतंत्र व्यक्तिकी साधक अङ्गुलियों के समान अनुचरिया ?

प्रियवाचक तेरे लोचन सदासर्वदा तेजस्वी रहियो और चश्मा लगानेकी नौबत न आइयो । परन्तु चश्मा लगानेवालोंके चश्मे जगतको देखते हैं या चश्मे के पीछेकी आखें ? अब एक पैर आगे बढ निस्य व्यवहारकी मायाके परदेको हटाकर आगे चल मनुष्यकी आखिया या पुतली जगतको देखती है, या आख और पुतली के चश्मोंके द्वारा कोई चेतन ? उषाको मेरे चश्मे या आखे नहीं देखते हैं किन्तु इन दोनो में होकर आत्माके किरण देखते है। चेतनभूमिमें चेतनमूर्ति के —दिव्यरूपमें साकारके, त्रिजलीकी पाखे हैं और उन पांखोंके किरणपक्ष निजस्थूल में हो कर परस्थूल और परस्थूलवासी चेतनको निरखते–छूते· अनुभव करते है। परस्थूलमें रोमराजिके समान प्रकट होते हुए चेतन· किरणके सन्देशों को निज चेतनराजके चरणों में ला रखते हैं वृत्तियों के समान इन्द्रियाभी आत्माकी कलायें हैं, सखिया हैं, सखीकृत्य करती है अपने लिये नहीं परन्तु चेतनके लिये । चन्द्रिका उषाको चाहती है सो मेरे लिये हां न ?

इन्द्रियां देहके लिये नहीं चाहती और न देहमात्र को ही चाहती है। विद्युत्कमलकी पंखडियों के समान प्रकटती और खिलती–फैलती प्रियजनकी इन्द्रियां प्रियतम के आसपास उडती हुई चेतन विजलीको चाहती है। प्रियतमके वस्त्रालङ्कारकी लालसा रहती है वैसेंही प्रियतम के देहकी भी वाञ्छा है। परन्तु वस्त्रालङ्कारके साथ उस वस्त्रवासी देह की, वैसेही देहके साथ देहनिवासी देहीकी भी परम वाञ्छा प्रियचेतन को होती है।

उषाके दर्शनसे मेरे रोमरोम खडे होते है और इस रोमाञ्चको उषाके रोमाञ्चकी इच्छा होती है। परन्तु लोहचुम्बककी आकर्षणविधुतसे जैसे लोहपत्तियोंकी रोममाला खडी होती है वैसेही उषाकी और मेरी खडी हुई रोमावलीभी चेतन भूमिके चैतन्याकर्षणकी किरणोंका ही अवतार है। नेत्र कुम्भमेंसे प्रकट हुई किरणें चन्द्रकुम्भमेंकी सारी किरणोंको चाहती है, वैसेही मेरी रोमावालीमें अवतीर्ण होती हुई चेतनकुम्भकी किरणमाला, उषाकी रोमवालीमें जन्मान्तर पाती हुई उसकी चेतनकुमकी किरणावलीकी वाञ्छावाली है। पृथ्वीपर होती बरसात जैसे आसमानसे बरसती है वैसेही प्रियजन और प्रियतमको देहचुम्बक विधुतके परम धाम चैतन्यभूमिमें हैं। ब्रह्माण्डलीला परब्रम्हकी रमणक्रीडा है वैसेही प्रियजनकी रसलीलाभी रसचैतन्यकी रमणक्रीडा है।

आत्मान रथिन विद्धि शरीर रथमेव च,

वाचक! बतलायगा कि रथके रणचक्र या रसचक्र रथके लिये है या रथीके लिये!

उषा कहती है कि भोजनकी भूख और पानीकी प्यास जैसे लगती ह वैसेही उसे मेरी इच्छाभी प्रकट होती है। अपने अनुभवसे मैं भी कहता हू कि उषाका कहना ठीक है। माताके हृदयामृत की प्यासको लेकर जैसे बच्चा पैदा होता है, वैसेही मनुष्योंकी यह प्रियके अमृतको

प्यास भी जन्मके समान ही प्राचीन है। बोये हुए बीज ऋतु बठनेसे समयपर अङ्कुरित होते हे वैसेही आजन्म बोये हुए उस बीजके अङ्कुर भी समयपर ऋतु आये प्रकट होते हैं। पौधे जमते ह और मोर मोरते हैं। उषा कहती है कि हम मिलते हैं तब उसके अङ्ग अङ्गकी शाखाके गुच्छ गुच्छमें मंजरियाँ सिल उठती हैं। देहरुह की सपाटीकी अनी अनी पर मेरे ज्वालामुखी घघकता है। इसीसे कहता हूं कि उषाका यह कहना महा अर्थवाली रसऋचा है। मेरे ज्वालायें प्रकट होती है तो कोमलाङ्गी उषाके ज्वालाके मोर प्रकट होते हैं, यह योग्यही है। वसन्त के आवपर मञ्जरी प्रकट होती हैं वैसेही जीवन के वसन्त के आनेपर मानवरुधिर में की रसिकताके मनुष्यरसाल पर भी मञ्जरिया प्रकट होती है।

यौवनकी कीलें मनष्यके चहरेपर प्रकट होती हैं तब आयुष्यकी वसन्त बैठी जान पढती है। यह आयुष्यकी वसन्त ही प्रियतम की वाञ्छा की ऋतु है।

वर्षाऋतुमें जैसे पपीहा पी, पी, की पुकार मचाता है वसही मनुष्यका अन्तर्वामी विरहग्रीष्मका स्नेहप्यासा पपीहा इस ऋतुराजमें पीपी की रटन लगाता है। सब कवियोंके गान इस रटनके अनुमान मात्र हैं।

जमनाके किनारे कन्हैयाने बसी बजाकर उसमें इसी रटन की धुन जमाई थी। यह आत्माकी आरजू का बोल था। जीवनकी जमनाके गहरे जलमें आत्माकी वसी का यह शब्द गिराया। गोपके, गोपीकी ओरकी गोपभावनाके ये गीत थे।

आत्माके समान ही सारी सद्भावनायेंभी अमर हैं और आत्माके समान ही स्नेह भावनायें भी अमर है। परब्रह्मको प्रकृतिके लिये और विष्णु भगवानको महालक्ष्मीजीके लिये वेही सद्भाव हैं कि जिनकी चिनगारिया प्रियजनोंके प्रेममन्दिरमें आजभी पूजी जाती हैं।

और स्नेह है क्या ? चोरी है, लूट है, दान है, या विजय है ? चोरे सो चोर, लूटे वह लुटेरा, माँगकर दान पावे वह भिखारी, अश्वमेध जीते वह चक्रवर्ती, यह तो शास्त्रमान्य प्राचीन सत्य है। इन्द्रने अहल्याका, सेकस्टसने ल्युक्रशियाका, व्रतभग किया सो चोरी, रावणने सीताका, पेरिसने हेलनका हरण किया, वह लूटः ये सबही रसाभास है, अमृत नहीं, विष है, जीवन नहीं, खून है। शकुन्तलाके आश्रममें मृग मृगियों के शिकारकी मनाई है। परन्तु दुष्यन्त महाराजभी भिखारी थे, यह सौभाग्य की बात थी कि माँगेहुए रसदानको पागये । रसदेशके महावीरोंकी न इस प्रकारकी इच्छा होती है और न आशाही। ये वीर तो, रघुकुल-भानु राम और गाण्डीवधन्वा अर्जुन बने हुए अपनी रसेश्वरीके गुणकीर्तन सुन स्वयंवरमें सचार करते हैं, त्र्यबक के बाणको तोडकर या मत्स्यवेध करके पुरुषार्थ प्रगट करते है, स्वयवर जीतते हैं और अपनी सीता या द्रौपदी के द्वारा निजगुणवीरत्व को समर्पित की हुई विजयमालाको धारण करते हैं। रसका वीरकेसरी सुन्दरी के सौन्दर्य की चोरी नहीं चाहता, लूट नहीं चाहता, भीख नहीं चाहता'—प्रभु जैसे भक्तके चाहता है वैसेही—स्वतन्त्र और स्वेच्छाजन्य सुन्दरी के द्वारा कियेहुए सौन्दर्य के समर्पण चाहता है, अङ्गके अभिषेकभी चाहता है और प्राणकी पुष्पवृष्टि भी चाहता है। " रसिकवर ! आपही इसके योग्य हैं लीजिये इस फूल डालीके फूलः " देह और देहींके इस प्रकारके उपहारकी प्रेमियों को परस्परमें पिपासा होती है। जिस तरणश्रद्धासे योजनगन्धाकी नावमें शान्तनु बैठे वैसीही रसश्रद्धाके समर्पणकी अपनी योजनगन्धासे सब-शान्तनु लालसा रखते हैं। जैसे बाँस और पतवार एक नावमें दो चलते हैं और गति एक सधती है वैसेही दो शरीर होनेपरभी जीवन एक होकर बहे यह रसिकोंकी रसभावना है। सरिता वेगसे सागरकी और बढे, सागर उछलकर सरिताका सत्कारकर मधुर हो जाय और रसतरङ्गमें

रसतरङ्ग को मिलाकर दोनों एक हो जाँय इस अन्योन्य के हृदयाभिनन्दन और रससत्कारको प्रेमके महावीर रसविजय कहते है। ये हैं स्नेह और येही हैं स्नेहके जीवन । प्रभुने प्रकृतिकी सूर्य किरणसे अर्चना की तभीसे नारी–नरकी देवी है। प्रकृतिने प्रभुको पूर्णिमाका चन्द्र किया तभीसे नर है नारीका देव। स्त्री–पुरुष तो एक ही ब्रह्मलताके दो पुष्प है कौन किससे कम है और कौन किससे ज्यादा ?

वाचक ! द्वैतवादसे चोकन्ना होता है ! तब तो तू स्नेह मीमांसा नहीं सीख सकता ! तू तुझेही चाहता है या निजकी उषाको ? तेरी उषा तुझे चाहती है या अपने आपको ? द्वैतवाद को मिथ्या कहनेवाले साजन नहीं है। मैं उषाको चाहता हू और उषा मुझे। एकोऽहं बहुस्याम् परमात्माने कहा तबसे द्विवचन ही क्या बहुवचनका जन्म हुआ है और यह बहुवचन जबतक ब्रह्मलीला बन्द न हो जायगी तबतक न भाषा व्याकरणमेंसेही लोप होगा और न ब्रह्माण्डके वस्तुव्याकरणमें से ही।

वडका एक थडभी सच्चा, उसकी अनेक शाखायें भी सच्ची, उनकी टहनियाभी सच्ची, और उनके अनेकानेक पान भी सच्चे इन सबमें–प्राणस्य प्राण–के समान एक ही रस बहता है। यह बात जितनी सच्ची है उतनी ही सच्ची यहभी है कि एकरसके परम तत्त्वसे पोषित होते हुए अनेक रंगरूपगुणधारी व्यक्तिभावभी विलास करते हैं।

अद्वैतभी सच्चा है और द्वैतभी। द्वैत सच्चा न हो तो अद्वैत खोटा हो जाय, द्वैत के बिना अद्वैत किसका ? उषा कहती है कि रास रचते हुए उसके दोनों हाथ ताली बजाने को अपने आप आकृष्ट होते है, इसी प्रकार हमारे सारे जीवन के द्वैतभाव आपसमें अद्वैतभावसे आकृष्ट होते हैं।

परन्तु यह जीवनताली बजी या नहीं ? उस समय तो हमारे सारे–के–सारे जीवनका यह महा प्रश्न था।

श्रुतिर्वाक्यानुसार एक और दोके भेद नहीं हैं परन्तु एक और बहुत का भेद है। तत्वतः अनेकानेक वादही सच्चा है। एक ज्योतिवाले अनेक तारे गगनमें प्रकाशित होते हैं।

अद्वैत शब्दकी सिद्धि द्वैतमेंही होती है और अद्वैत शब्दमेंही द्वैत शब्द मौजूद है। इसी तरह अद्वैत भावकी सिद्धिभी द्वैतभावमेंसे है और अद्वैत भावके भीतरभी द्वैतभाव लगा हुआ है। वाणी और अर्थ एक है या जुदे जुदे? जुदे होने परभी एक हैं और एक होने परभी जुदा हैं उषाके और मेरे समान, प्रियतमा और प्रियतमके समान, राधा और कृष्णके समान।

विसर्गकी दो बिन्दुओंका उच्चारण और स्टिरियसकोपकी दो तसवीरोंका दृश्य एकही होता है इसीका नाम है द्वैताद्वैतभाव।

एक किरणमें सात रग और सात रगोंमें एक किरण एक ज्योतिमें अनेक किरण और अनेक किरणोंमें एक ज्योति इसीका नाम है अनेकानेक वाद। मैभी सच्चा और उषाभी सच्ची तूभी सच्चा और तेरी उषाभी सच्ची। हम सब मृगजल नहीं हैं, या रातके स्वप्नतरग नहीं है। अनन्तके प्रकाशमय दिवसोंमें रहनेवाले अनन्तके कुमार और कुमारिया हैं। अनन्तके चौकमें क्रीडा करते हैं, अनन्तकी लीला रचते है।

सब प्रियतम और प्रियतमायें अनन्तकी ही वंशज सन्तानें है। सान्त है सो लीला है, अनन्तके रसजलकी ऊर्मिया है, रसजलके समान ही सच्ची है।

नरसीजीने गाया है कि 'ब्रह्म लटके करे ब्रह्मपास' हमें यह सच्चा जान पडता है। उषाकी मुस्कराहट मुझे और मेरा मुस्कराना उषाको प्रेमके परम सत्योंके समान ब्रह्मके लटके ही जान पड़ते है। वाचक! तू हसता है कि पागल कीसी बातें है। होंगी, तू सच्चा होगा। मैही सच्चा हूं ऐसा मैंभी नहीं कहता। परन्तु मेरु हिल जाय, ब्रह्माण्ड चल जाय, तो-

भी उषा तो सच्ची ही है । क्या तेरी भी उषा सच्ची नहीं है ? और क्या तेरी उषाभी ऐसाही नहीं कहती, पूछ देखना शङ्का होतो फिर एकबार, ऐसेही ' मह्मलटके ' करके ।

और सौन्दर्य सौन्दर्य को बुलाता है, रसिकता रसिकताको आमन्त्रण देती है. असौन्दर्यको नहीं, अरसिकता कोभी नहीं । कारण कि सौन्दर्य नीति और प्रभुता है, असौन्दर्य अनीति और अप्रभुता है । मनुष्यकी प्रथम सहज वृत्ति पुण्यकी है, और द्वितीय विकृतवृत्ति पापकी । इसीसे प्रभुका पुण्यबालक सौन्दर्याभिमुख है असौन्दर्याभिमुख नहीं ।

और सौन्दर्य केवल सफेद रगही नहीं है भला ! ऐसा होता तो प्रभुका पूर्णावतार असुन्दर कहा जाता और रसमूर्ति राधिकाजी असौन्दर्यकी उपासना करनेवाली कही जाती ।

प्रकृतिदेवीके महाप्रासादमें सुन्दरता नियम है, असुन्दरता अपवाद है । और अपवादोंमेंसे सिद्धान्त निकालनेका ठेका तो मृगजल और सर्परज्जुभ्रमके स्वप्नजालमें रमण करनेवाले मायावादी वेदान्ताचार्योंके लिये ही रहने दो । असुन्दर फूल या असुन्दर तारे कहीं देखे है ? परमात्मा परमसौन्दर्यनिधान है, इससे प्रभुके पुत्र और पुत्रियां सौन्दर्यके पुजारी और पुजारिने है । रसेशकी रससन्तानों को रससुन्दरताकी प्रभुताके आकर्षण होते है ।

मनुष्य स्वभाव सुन्दर है क्या नर और क्या नारी ?

बीजमें रस है उसका प्राकृतिक मूर्तस्वरूप पुष्प है । इसीतरह नरनारीके अन्तरमें बसी हुई रसिकताका प्राकृतिक प्रतिमादर्शन ही सुन्दरता है । रसके जमे हुए पुष्प ही सौन्दर्य है । इसी लिये सब रसिक सुन्दर होते है और सुन्दर सब रसिक होते है । प्रियजनके देह देहके सौन्दर्य को चाहते हैं और प्रियजनके आत्मा आत्माके सौन्दर्यको, प्रियका

किसे नहीं चाहता ? प्रियका सारा सौन्दर्य प्रियके सौन्दर्यसर्वस्वको चाहता है ।

विश्वकी विकृतियोंको तूने देखा है? बलात्कारसे विधवा रही या यौवन-युगमें कुमारी रही को देख कर मुझे तो विश्वकी विकृति या विधाताकी विचित्रता याद आती है। मुझे तो ये कुसुमहीन कुसुमके पौधे जान पडते है। ऐसा मालूम होता है कि भरे ऋतुराजमें भी मोरहीन आम्रघटायें है ।

नैष्ठिक ब्रह्मचारी या ब्रह्मचारिणिया पृथ्वीके चबूतरेपर ब्रह्मलताके ब्रह्मपुष्प है । स्मरणसगी विधुर या विधवा ससारके अधोर वनमें स्नेहके सन्तजन है । परन्तु सयोग बलात्कारकी विधवा या कुमारी नवयौवनायें तो वसन्तपूर्णिमा की धन्यतम चादनीमें प्रकट हुई होली की झालें जान पडती हैं । अपूर्ण लालसाओंकी चितायें लगती हैं ।

बाललग्न और प्रौढलग्न दोनो खोटे हैं । रसशास्त्रमें तो यौवनलग्न ही सच्चे है ।

ब्रह्माण्ड में दो प्रकारके महाबल है केन्द्रागामी और केन्द्रापगामी, इनमें एक कोटि देवकी है दुसरी शैतानकी, एक तेजकी है दुसरी अन्धकारकी, एक जीवनकी है दुसरी मोतकी । एकका परिवार स्नेहवात्सल्यादि सम-न्वयी विभूतिया है दुसरी का ईर्ष्याद्वेषादि कुसम्पी प्रवृत्तिया । सूर्यमा-लाओंके और सारे विराटके चक्करमण ओर धुरभ्रमण प्रकटे तभी से अहुरमज्द और अहरमनके, देव और दानवके महारास पैदा हुए है ।

नरनारी के महागुरुत्वाकर्षण केन्द्रगामी है अत एव वे दैवी है-अहुरमज्दके है । यही कारण है उनका यशोगान करते हुए इतना इतना समय व्यतीत होजाने पर भी कविगण न विरतही होते हैं और न थकते ही हे ।

मेरे हृदयमें उठता है कि रातद्दिन और वहभी आयुष्यके अन्ततक

उषाकी इस कथा को लिखेही जाऊ । परन्तु आम पर जितने मोर आते है उतनी कैरिया नहीं आतीं, और मनुष्यके अभिलाष होते है उतने फल नहीं हो पाते ।

पृथ्वीपर पहले पहल सूर्य उगा और मनुष्यने आश्चर्यचकित नयनासे इस मार्तण्डराजके दर्शन–प्रथम दर्शन किये उस समय उसकी जो दशा हुईथी वही दशा प्रियतम के प्रथम सौन्दर्यदर्शनसे प्रियजनकी होती है । सारे दिनभर कुतुकलोचनसे देखनेमें आया हुआ भास्कर रजनीके अवतीर्ण होनेसे अस्त हो और अन्धकारके वह्लकी गुहामें प्रथम बार जा छुपे, और उस समय मानवी की आखें दिशादिशाकी झाडियोंमें उसे खोजती हुई भमें, इसी प्रकार के प्रियतम के प्रथम आकर्षण प्रियजनको भीं खींचते है । प्रातःकालमें फिर सूर्योदय हो, अन्धकार हट जाय, पृथ्वीपर प्रकाश फैले और इस भास्कर के भर्गका पूज्य भाव प्रकट हो, इसी प्रकार के पूज्य भाव प्रियजनो को प्रियतमोंपर प्रकट होते है । प्रभातके अरुणोदय कीसी पूज्यभावकी कलिकाओं मेंसे प्रभातकी मधुशीतल प्रभासुधा-सी वत्सलताकी परिमल मयी पँखडिया खिलनी हैं और मध्यान्हके तपते हुए उन्हालेके दो पहर की ऐसी मदोन्मत्तता कामी उभार होता है । पूर्णिमाकी रातको इस सूर्यराजका स्नेहावताररूप चन्द्रराज रातभर प्रकाश करता है । यद्यपि उस सुधाकरमें शशक अङ्क चन्द्रक कान्तिपूर्ण मुखपर गोदनेके ऐसा विराजमान रहता है । इस पूर्णिमाकी रजनीमें चन्द्रिकाके ऐसी रस-लीला फूटी देती है, भावनाके नृत्य–ज्योत्स्नाकी ऊर्मियोंके ऐसे सुललित लास्य करते हुए–हास करते हैं । परन्तु इस चाँदनीके महासागर केभी तल है अतल नहीं । ससारकी इस अपूर्णतामें वसी हुई परम करुणता कालावकाश भरमें फैली हुई रहती है ऐसी ही रसकी मेघावलीभी कुछ और ही है । जैसे सागर की तरङ्गावलिया गिनी नहीं जा सकतीं वैसे

हीं रसकी भेदावलीकी परम्परायें भी ऐसी नहीं है जो गिनी जासकें। जीवनके सूर्य की और सूर्यतेजकी यह गहन भेदावली है। परन्तु रसानन्द की भेदभूमिका तो सबसे विशेष गहनतम है। ऋषियोंने गाया है कि--रसो वै स.--इस शाश्वत मोक्षभूमिके भेदमहल देवमणियोंसे चुने गये है और देवरत्नोंसे सजाये गये है।

स्नेहकी समाधिकी कथा कहना अभी बाकी है। वाचक! झुझलाता नहीं गया ! प्रेमका पृथक् करण करना तो मुझे भी अच्छा नहीं लगता। परन्तु उषाकी पुण्य कथा कहते हुए तो मुझे हमेशा प्रमोदही प्रमोद होता है। क्या तुझे अपने प्रियतमके भावमें उडना कभी थकाता है ? जाग्रत् स्वप्न तो सबने देखे है। खुली आखोंके साम्हने जगत को लोप होते हुए तो तूने भी अनुभव किया है। पलकें खुली हुई हों पुतलियोंके हीरे तेजस्वी हों और दृष्टिशक्ति विराम पा जाती है--सागरके भाटेकी भांति दृष्टिके ज्वारका भाटा होकर किरणें अन्तरमें इकट्ठी हो जाया करती है--यह तो कुछ तुझसेभी छुपी हुई बात नहीं है। विचारके विमानपर आत्मा उड रहा हो तो स्थूलता हट जाती है, इन्द्रिया सुन हो जाती है और चेतनविद्युत् आत्माके ब्रह्ममहलमें जा सञ्चालित हो बिराज जाती है; इसमें तो तुझे आश्चर्य या चमत्कार प्रतीत नहीं होते।

तुझे कोई कोई समय जो सहजसाध्य है, वही योगशास्त्रके शास्त्रविज्ञानियोंको यत्नसे सिद्ध हुआ है। नगरके भक्तजन जैसे देवमन्दिरमें उभराते हैं वैसेही देहनगरनिवासिनी इन्द्रिया और वृत्तिया आत्ममन्दिरमें दोडी आती है। परन्तु महाभक्तोंका भक्तिभाव जैसे मन्दिरके शिखरोंको छेद, आकाशको उलांघ, ब्रह्मलोकमें विहार करता है वैसेही योगीश्वरभी देहके दैवतको इकट्ठा कर चेतन विमानपर चढ मानवीके ससारमें, विश्वके अनन्त व्योम विस्तारमें, और परब्रह्मके ब्रह्मलोकमें उडते है। प्राणविनिमय परकायप्रवेश ब्रह्मसमाधि आदि आदि आत्माके उडानकी प्रक्रियाओंके पृथक् पृथक् पारिभाषिक नाम हैं।

स्नेहयोग स्नेहजीवन स्नेहसमाधि भी ऐसे ही हे । स्थूलप्रवेशी किरणोंकी भाति प्रियतमचेतनके स्नेहकिरण प्रियजनचेतनकी स्नेहकिरणोंसे गुथे, दिलके तन्तु बुना कर एकदिलीकी डोरी बने, ये है स्नेहियोंका स्नेहयोग । उरके उमार रुधिरमे उभरे और लताओंकी पत्तियोंकी–सी गुथी हुई दो शरीरियोंकी शरीरपत्तिया ससारकी बगीचीमें एकही मडपमें शोभा दें, ये हैं स्नेहससारियोंके स्नेहजीवन । दृष्टिमें खडा होनेपरभी देहको न देखे, गुथी हुई शाखामें शाखाके ऐसे अग–अगमें गुथे हुए होने परभी अगमेंसे विराम पाये हुए चेतन—पृथ्वीपरसे आसमान पर उडते हुए तेजबाणके ऐसे, स्नेहके अन्तरिक्षमें एक पखीकी दो पाखकी भाति दो होन परभी एकही पुण्य गति साधते हुए–परम रसभूमिमेंही विहार करे' यह है मनुष्यकी स्नेहसमाधि । स्नेहके ये तीनों स्वरूप–योग, जीवन, और समाधि–पुण्य है, प्रभुता है, जगतका सौभाग्य है । ससारमन्दिरमेंकी देवप्रतिमा है । ब्रह्माण्डमेंकी ब्राह्मी रसकला है ।

स्नेहबाणसे स्नेहीजनके हृदयोंको कौन नहीं बेध जानता कि स्नेहयोगके परकायप्रवेश अबभी समझाने पडें ?

ब्राह्मी स्थितिके ब्रह्ममहलके ब्रह्मतेज कैसे है ? अग्निकी भाति जलाने वाले या अमृतकी तरह शीतल करनेवाले ? स्नेहमुक्तिकीभी परमस्थितिका यही प्रमाण है । स्नेहके तेजसे पीयूष प्रस्रवित होता है । यह मदिराका नशा नहीं है, जहरकी मौत नही है और नहीं है अग्निकी झाल । स्नेहकी ब्राह्मी स्थिति प्रसन्नता है, सौमनस्य है, वत्सलता है, चित्तप्रसाद है । प्रेमके परम रसानन्द तो सच्चिदानन्दकी ही कला है ।

सुजनजूनी रसिकताकी इस भेदभूमिमें हम इसतरह खेलते थे । उषाकी कविता मुझे बुलवाती और मेरी कविता उषाको । इसतरह हमारे रसजीवनका महाकाव्य रचाता था ।

ओ सुखडेके लोभियो ! स्नेह केवल सुख नहीं है । नहीं तो विप्रलम्भ शृंगारका दुःखयुग स्नेहयुग न कहा जाता ।

स्नेह यानी जीवनज्योति, सारे संसारका अमृतदीपक । आयुष्ययात्राकी यह प्रेरणा है, ब्रह्मधाम की पार्से है ।

स्नेह जन्मकी तिथिसे जीवनमें कविता का जन्म है । जो जीवनमें कविता न जन्मे तो समझना कि जीवनमें स्नेह ही पैदा न हुआ ।

इस स्नेहवर्षाके बरसते ही जीवनमें उत्साह साहस वीरत्व आदि तत्त्वोंके फव्वारे उछलने लगते हैं । शरदके जलके ऐसे निर्मल और वेगवाले जीवनमें जलके पूर स्नेहकी ऋतुमें बहने लगते हैं ।

वाचक ! इस चिरकालके भेदकी भूमिकाका एक परदाभी तेरे लिये खुला या नहीं ? इन शब्दोंमें तेरे आजके अनुभव नहीं केवल स्मरणभी हो तो बस है स्मरण नहो और आशाही हो तोभी काफी है । पूर्वसे नहीं तो पश्चिमसे प्रतिबिम्ब पडते ही हैं, इसी तरह तेरे भून कालकी नहीं तो तुझे अपनी भविष्यकी छाया देख पडना !

उषा और मै उस समय तो इस भेद भूलभुलैयामें अलग २ भमते थे और एक दूसरेको दूरसेही बुलाते थे । हम इस प्रेमके आमन्त्रणके गीत सुनते थे । कभी कभी कहींक रसजलकी तीर पर मिलते और प्रसन्न होते थे तोभी ये भेद हमारी समझमें बहुत कम आते थे । ऐसी ही कुछ अटपटी और गहन है स्नेहके सनातन भेदोंकी यह भूमिका ।

सरिता के दोतीरोंपर बैठे हुए चक्रवाक और चकवाकी रातभर एक दूसरेको पुकारते रहते हैं ऐसेही जीवनकी सरिताके दो तीरोंपर बैठे हुए मै और उषा अन्धकारमें एक दूसरेको पुकारते थे । समस्त जीवनकी यह पुकार थी आयुष्यभरके ये उच्चारण थे । अनन्तताके आम्रोद्यानकी मानो दो कोकिलायेंही न कूक रही हों ।

स्नेहेश्वरके आशीर्वाद सब स्नेहके पथियोंपर उतरें ! और सफल होवें !

प्रकरण १० वा.

सजीवन

वाचक ! तू चमत्कार मानता है या क्या ? मैने तो जीवनमें चमत्कारोंको देखा है और उनका अनुभवभी किया है।

होते होते वसन्त पाचँ आई परन्तु मुझे मालूम होने लगा कि मेरे अन्तरकी वसन्त पीछी लौटकर न आयगी।

फूलोंके पोधोंपर कलिया लगीं, कलिया खिलकर फूल हुए परन्तु मेरी आशाके फूलोंके पौधोंपर न कलियाही लगीं और न फूल ही खिले।

उषाके चौकमें गुलाबका बगीचा था। उस बगीचेकी एक एक क्यारी मानो फूलोंकी छाब बनी हुई थी। फुलवाडीमें फिरती हुई उषा फूले हुए गुलाबके पोधेके ऐसी प्रकाशमान जान पडती थी। उसके गौरे गौरे अङ्गपर गुलाबकी पखडिया खिल रही थीं। उसकी सफेद साडीमें गुलाबी कसीदा था। उसकी वेणी खिलमें सितारे भरे गुलाबी मखमली फीते से बाधी हुई थी। उसके मुखपर देवी गुलाब प्रकट होते थे। उषाके अवयव अवयवसे गुलाबका सौरभ जगतके बगीचेमें महक रहा था, मानो उषा गुलाबके फूलोंकी गुथी हुई पुतलीही न हो!

और इस गुलाबकी पुतलीके आस पास काटें थे। बीननेको जानेसे वे मेरे चुभते थे।

हमारे देशमें वसन्त जल्दी ही आती थी। वसन्त पञ्चमीको तो बगीचिया फूलोंसे भरी हुई डालियोंके समान लदपद हो जाती थीं।

धनुर्मास बीत गया था। मगलाके दर्शन करनेको माताकी रजाईमें लुकती–छुपती उषा जाती थी तब ऐसे दर्शन होते थे कि प्रौढ व्योमसुन्द-

रीके देहमें अरुणकी कुकुमरेखायें उछलती हुई शोभायमान न हो रही हों ! देवदर्शनसे प्रफुल्लित हुए उषाके मुखपर अमृतके प्रकाश क्रीडा करने लगते थे । धनुर्मास मेंके उषाके ये दैवीरंग आज अनेक प्रकारसे प्रकाशित हुए ओप पाते थे । फव्वारोंकी धाराओंके ऐसे, इन्द्रधनुषके उर्द्धरेख देव-किरणोंके ऐसे, आयुष्यके अद्भुत स्वर्गीयरंग उषाके चारोंओर फिरते हुए झलमलाते थे । अंगमेंसे अमरतत्त्वकी मानो ऊर्मियां उछल रही थीं । रोम रोममेंसे आत्माके अमृतके झरोंके फव्वारे उडते थे ।

परन्तु गगन की अद्भुत सुन्दरता, दर्शन करनेके लिये है अपनी करनेके लिये नहीं, ऐसे ही उषाकी सौन्दर्यप्रभाकेमी मेरे तो दर्शन करना ही शेष रहा था ।

नगरमें विवाहोंकी ऋतु प्रारम्भ हुई । कितने ही बालक और बालि-कायें परणाई जाती थीं तो कई एक प्रौढ प्रेढाओंको न ब्याहते थे । कहींपर कुलसे कुलीनता का विवाह किया जाता था तो कहीं थैलीसे थैलिया ब्याही जाती थी । यौवनसे सुन्दरताका विवाह तो कहीं-कहीं होता था । किसी प्रसगपर नरनारीके दैहिक गुरुत्वाकर्षणके परिणाममें नरनारीके प्राकृतिक स्थूल मूलतत्त्वोंका विवाह होता था । इन सबको लग्न मानकर जगतकी प्रजाओंकी तरह हमारा गृहससार सतुष्ट होता था । हारे हुएभी पग रोप कर कभी कभी जीत जाते है वैसे ही इन सासारिक विवाहोंमें भी कभी कभी अद्भुत दम्पती की जोडी जन्म पा जाती थी । परन्तु दुनियाके लग्नमडपोंमें प्रेमदेवकी प्रतिष्ठा तो कहीं-कहीं-विरल ही होती थी ।

एक समय सायमन्ध्याके समय मन्दिरकी चादनीमें उषा और मैं खेल रहेथे और धूमकेतु उगा था । उषा अपशकुन मानकर डरी, तोभी धूमकेतुके तेजकलाप की भव्य शोभा होनेस दर्शन मुग्ध हो कर खडी रही । उषाके माथे परसे मैने साडीको खिसका दिया । उषाके केशक-

आपको खोल बालोंको बखेर दिये और उनमें सफेद फूलके तारे गूथे। फिर मैंने कहा उषा! तेरे मुखके तेजचक्रके आसपास फिरती हुई जैसी यह फूलधारा बरसती है वैसीही धूमकेतुके तेजचक्रके आसपास उसकी तेजस्वी केशधारायें बरस रही है। उषा! तूभी मेरा धूमकेतु है।

मनुष्य बोलता है आसमान झेल लेता है और प्रारब्ध थोडी बहुत प्रतिध्वनि करता है। अपशकुन का बोल भूल कर भी कोई न बोलियो!

मन्दिरमें हम 'प्रेम प्रेम' खेलते तब किसी अदेखेको वह न सुहाता था। मै तो कहता कि स्त्रीपुरुष मिलकर जैसे भावके हिन्दोले पर चढते है वैसे रसझूले पर आत्मा न किसी देवमन्दिरमें झूलता है और न लोक मन्दिरमें! आत्माकी सारी ये सारंगिया गाज रही हो तब क्या पास पासके तार न कम्पेंगे?

परन्तु हमारे हृदयके तारो को तो बीचमे अन्तर डालकर अलग किया गया था।

निराशाके अपने एकान्तवास को दूर रखकर एक दिन मैं नगरमें गया था। सूर्यतेजकी पृथक् पृथक् रंगप्रभासे सजी हुई रंगीन बदलियों के ऐसी सुन्दरिया नगरके गगनकी गलीगली और चौक चौकमें घुम रही थीं। ऐसा मालूम होता था कि मानो सध्या के भाति भातिके सुवर्ण-रंगोंको चुन चुन कर कपडे गूथे गये हों और उन्हें ही कुलाङ्गनाओंने ओढे हों। शरीरकी शोभा को छुपाते हुएभी सविशेष प्रकट करते सूक्ष्म परिधान, चन्द्रकलाको कुछ कुछ छुपाती हुई होने पर चमक प्रक-टाती हुई बारीक बदलियों की तरह उड़ रहेथे। नगरके चोकमें मानों बिजलियां चमक रही थीं।

मै नगरमें वैसेही चला गया था। पैरोंको मैने आज्ञा न दी थी कि अमुक जगह जावें परन्तु चेतनकी वृत्तियोंका निरन्तर अनुसरण करने वाले पैर बिना कहे ही अन्तर की एषणा को समझ गये हों इस प्रकार

उसी दिशा में गये । उषा जिस अटारी पर उगती थी उसीके नीचे मेरे पदहस मेरी देह को ले गये । देही तो सदा वायु और आकाशकी भांति वहीं बसता था ।

वहा तो वसन्तका बाग खिला हुआ था । सौन्दर्यके उस महलमें सुन्दर शृङ्गारवाली सुन्दरिया लचक-नमकर रसान्दोलन करती हुई लताओंके ऐसी-आ जा कर रही थीं और वहा गीत गाये जा रहे थे । मेरी कर्णेन्द्रिय ने वलवान होकर सुना तो विवाहका गीत जान पड़ा । नगरकी अनेक हवेलियोंमें से सुनाई दिये थे वैसेही इस गीतके भी शब्द थे-वेही थे परन्तु इसके स्वरोंने मेरे आत्माको बिलो डाला. इस गोरस की छाछ कर नवनीत निकाल धूलमें मिला दिया ।

किसीने कहा कि उषा परनती है । 'उषा परनती है' इतनेही मन्द मन्द शब्दोंने कानोंके परदोंको चीर दिया, मर्मस्थानमें मौतके बाण मारे और आत्माको मूर्छित कर दिया ।

एक बटन दबातेही बिजली उछल कर महलोंके-महलोंको तोड फोड कर उडा डालती है, वैसेही इन दो शब्दोंके कानोंपर पडते ही मेरा सारा-का-सारा चेतन चमक उठा और शान्तिके जहा महल थे वहापर गगापूरके तूफान उछल पडे ।

कृष्णपक्ष मिट-कर यह तो घोर अंधेरी तमिस्रा साम्हने आ खडी हुई । उषा कुमारीके कौमार को कोई छुवेगा ? इस निर्दोष और इस कि-सीके स्पर्शसे पतित न हुई कुमारी को कोई कुम्हलावेगा ? इस अद्भुत लोकोत्तर सौन्दर्यका कोई हरण करेगा ? इसके अगके 'अछूते दामन' को कोई छुवेगा ? इसको छूनेकी मेरी लालसा थी, इसको मैं कुम्हलाना चाहता था, इस सौन्दर्यकी अद्भुत सीताको हरनेके लिये मैं तडपता था, इस लोकपावन पल्लेको पकडनेको मैं निसासे भरता था: इन सब बा-

तोंको मै भूल गया। किसीको मैंने राक्षस कहा, किसीको रावण बताया: परन्तु मेरे हृदयकी लङ्कामें रावण जी रहा था उसे तो मैंने देखा भी नहीं।

जगत शोभन उस पियूषकी पखडी चन्द्रकलाको कोई राहु निगल जायगा, त्रिलोकके सौन्दर्यका मुकुट

उस गीतकी मधुरता मुझे कटु लगी । वे रूपवती अङ्गनायें मुझे विरूपा सूर्पनखा जान पडीं । वह उज्वल प्रभात मुझे अमावास्याका अन्धकार प्रतीत हुआ। जगतका मेरा सुधारस फैल गया और विषवल्लियां जगह जगह उग निकलीं।

जगत ! तु कडुवा है या मीठा ? तेजस्वी है या अँधेरा ? जगत ! यह मुझे बतला कि तेरा एकही प्राकृतिक रंग किसने देखा है या कल्पना किया है ?

सूर्यतेजसे भरा हुआ वह मेरा प्रभात था परन्तु वह सूर्य एकाएक अस्त हो गया, और मेरे जीवनकी घाटीमें गहरा अन्धकार आ गिरा।

इस अस्त होते हुए सूर्यकी किरन किरनमेंसे कौंचकी फलियोंके जीव उड आये, मुझे काटने लगे।

उस दिन मैं नगरमें भ्रमा, जनसमाजके समूहमें फिरा परन्तु मैं कुछभी न देख सका। ऐसा हो गया कि मेरी आखोंने अन्धकारके चश्मे न पहने हों। मैं पुरजनों में आँखें खोले हुए फिर रहा था परन्तु देख कुछभी न पाता था।

सुबहही नदीपर न्हानेको गया। नदीके मन्दमन्द बहते हुए पानीकी पखडियोंमें उषाको मन्दमन्द हसते और पानीमें बह जाते हुए देखा। सूर्यकी किरणें जैसे जलकी लहरोंपर गिरतीं, चमकतीं और हँसती-हँसती बहती थीं, वैसेही प्रवाहमें बहती हुई उषा दिखाई दी। दूरसे आते हुए जल छातीके पास आते कुछ देर ठहरते-खेलते और धीरे धीरे नाचते-नाचते दूर-दूर और उससेभी दूर चले जाते थे, वैसे ही उषा

उसी दिशा में गये। उषा जिस अटारी पर उगती थी उसीके नीचे मेरे पदहंस मेरी देह को ले गये। देही तो सदा वायु और आकाशकी भांति वहीं बसता था।

वहा तो बसन्तका बाग खिला हुआ था। सौन्दर्यके उस महलमें सुन्दर शृङ्गारवाली सुन्दरियां लचक–नमकर रसान्दोलन करती हुई लताओंके ऐसी–आ जा कर रही थीं और वहा गीत गाये जा रहे थे। मेरी कर्णेन्द्रिय ने बलवान होकर सुना तो विवाहका गीत जान पड़ा। नगरकी अनेक हवेलियोंमें से सुनाई दिये थे वैसेही इस गीतके भी शब्द थे–वेही थे परन्तु इसके स्वरोंने मेरे आत्माको बिलो डाला. इस गोरस की छाछ कर नवनीत निकाल धूलमें मिला दिया।

किसीने कहा कि उषा परनती है। 'उषा परनती है' इतनेही मन्द मन्द शब्दोंने कानोंके परदोंको चीर दिया, मर्मस्थानमें मौतके बाण मारे और आत्माको मूर्छित कर दिया।

एक बटन दबातेही बिजली उछल कर महलोंके–महलोंको तोड फोड कर उडा डालती है, वैसेही इन दो शब्दोंके कानोंपर पडते ही मेरा सारा–का–सारा चेतन चमक उठा और शान्तिके जहा महल थे वहांपर गगापूरके तूफान उछल पड़े।

कृष्णपक्ष मिट–कर यह तो घोर अंधेरी तमिस्रा साम्हने आ खडी हुई। उषा कुमारीके कौमार को कोई छुवेगा? इस निर्दोष और इस किसीके स्पर्शसे पतित न हुई कुमारी को कोई कुम्हलावेगा? इस अद्भुत लोकोत्तर सौन्दर्यका कोई हरण करेगा? इसके अगके 'अछूते दामन' को कोई छुवेगा? इसको छूनेकी मेरी लालसा थी, इसको मैं कुम्हलाना चाहता था, इस सौन्दर्यकी अद्भुत सीताको हरनेके लिये मैं तडपता था, इस लोकपावन पल्लेको पकडनेको मै निसासे मरता था इन सब बा-

तोंको मैं भूल गया। किसीको मैंने राक्षस कहा, किसीको रावण बताया: परन्तु मेरे हृदयकी लङ्कामें रावण जी रहा था उसे तो मैंने देखा भी नहीं।

जगत शोभन उस पियूषकी पखडी चन्द्रकलाको कोई राहु निगल जायगा, त्रिलोकके सौन्दर्यका मुकुट

उस गीतकी मधुरता मुझे कटु लगी। वे रूपवती अङ्गनायें मुझे विरूपा सूर्पनखा जान पडीं। वह उज्वल प्रभात मुझे अमावास्याका अन्धकार प्रतीत हुआ। जगतका मेरा सुधारस फैल गया और विषवल्लिया जगह जगह उग निकलीं।

जगत! तू कडुवा है या मीठा? तेजस्वी है या अँधेरा? जगत! यह मुझे बतला कि तेरा एकही प्राकृतिक रंग किसने देखा है या कल्पना किया है?

सूर्यतेजसे भरा हुआ वह मेरा प्रभात था परन्तु वह सूर्य एकाएक अस्त हो गया, और मेरे जीवनकी घाटीमें गहरा अन्धकार आ गिरा।

इस अस्त होते हुए सूर्यकी किरन किरनमेंसे कौचकी फलियोंके जीव उड आये, मुझे काटने लगे।

उस दिन मैं नगरमें भमा, जनसमाजके समूहमें फिरा परन्तु मैं कुछभी न देख सका। ऐसा हो गया कि मेरी आखोंने अन्धकारके चश्मे न पहने हों। मैं पुरजनों में आँखें खोले हुए फिर रहा था परन्तु देख कुछभी न पाता था।

सुबहही नदीपर न्हानेको गया। नदीके मन्दमन्द बहते हुए पानीकी पखडियोंमें उषाको मन्दमन्द हसते और पानीमें बह जाते हुए देखा। सूर्यकी किरणें जैसे जलकी लहरोंपर गिरतीं, चमकतीं और हँसती-हँसती बहतीं थीं, वैसेही प्रवाहमें बहती हुई उषा दिखाई दी। दूरसे आते हुए जल छातीके पास आते कुछ देर ठहरते-खेलते और धीरे धीरे नाचते-नाचते दूर-दूर और उससेभी दूर चले जाते थे, वैसे ही उषा

भी दूर दूर और उससे भी दूर, जीवनके क्षितिजपर, और उससेभी परे जाती हुई देखी।

शकरकी पुतली जैसे जलमें पिघळ जाय वैसेही जलमें पिघलती हुई उषा जान पड़ी।

त्वचाके छोटे छोटे सब छिद्र खुल गये और उसमें आत्माका सोता झरजातासा जान पड़ा।

सब कोई कहते है कि भोजनके अमृतसे आत्माका पोषण होता है परन्तु उस दिन तो मुझे वह विष जान पडा और उस विषके खानेपरभी देह या देहीकी मृत्यु न हुई। मेरे उरका वैश्वानर अतृप्त था, इस अन्तरके अग्निकुंडकी ज्वाला बिना आहूतिके धकधका रही थी अतएव खानेपीनेसे भी मेरी भूख प्यास शान्त न हुई। शान्ति, देहके पोषण करनेमें नहीं है आत्माके पोषण करनेमें है इतना उस समय ही मेरी समझमें आ गया होता यदि मेरी बुद्धि न मारी गई होती।

दो पहर हुआ, मध्याह्नका सूर्य तपा, उषाकी और मेरीभी ज्वालायें जाग उठीं। जिन उसके अगोंमेंसे शीतलता और मधुरता फैलती थी उन्हीं देवअङ्गोंमेंसे विराटकी महाज्वालायें उडती हुई जान पडीं। उसके ललाटमेंसे मध्याह्नके आगके शोले भभक कर उठते हुए देख पड़े। वह ऐसी जान पड़ी कि सती चितापर चढ़ी हुई जल रही है। ऐसा जान पडा कि मध्याह्नके किरण किरणमें नया मध्याह्न प्रकट हो रहा है! ऐसा भान हुआ कि प्रचण्ड ब्रह्माण्डमें किसीने होली लगा दी और उसमें ब्रह्माण्ड जल रहा है?

अग्निकी बैठकके समान उषाकी अग्निमूर्ति आंखोंके साम्हने उछल रही थी।

दोपहरी ढल गई। मध्याह्नके बाद जगत की छायायें जैसे बढने लगीं वैसेही मेरे अन्तरकी भी गभीर और गहरी छायायें बढ गई। जगतमें जैसे तेजछायाकी अटपटी थी वैसेही अन्तरमें भी उषाचिन्तन और

उषाकी अनासिद्धिकी धूपछायाकी अटपटी पडी थी। आशाभरे विश्वमें वह निराशाकी साझ थी। तृप्तिवाले जगतमें वह अतृप्तिकी झाल थी और झाल में भी उस महाधूम्रके बादलोंके पट थे।

नगरके बाहर बडका यूथ था और यूथमें अनन्त जलकी वापिका थी। नरनारिया इस वापीका जल भर कर लाते है, नगरजन उसका जल पीते हैं। नगरका यौवन प्रत्येक सायकाल को वहा बसी बजाता है।

मै उस साझको वहा गया परन्तु अपनी बसी भूल गया। यौवनके चेवके ऐसा एक कुमार वहा गीत गा रहा था।

उसने गाया कि—

" आशा भरा एक जवान आया बसी बजाई उसने सुनी परन्तु अनसुनी करके चली गई।

दूसरे दिनभी वह जवान आया, और बसी बजाई उसने सुनी, मिठास सी हँसी और गई।

तिसरे दिन वह जवान न आया, वहभी न आई। परन्तु ससारचक्र चलता ही रहा।

एककी बसी और एक की मुस्कराहट दोनोंके अन्तरमें चिरजीव होकर स्थापित हुए, प्रतिष्ठा और पूजा पाये, या नहीं ? "

मै गीतको न समझा और न उसके शब्दही याद हैं। उन दोनोंका विवाह हुआ या नहीं ? कोई कहेगा कि इनके सौभाग्यखिले या स्मरण ही रहे ?

जीवन कैसा है ? बसीके ऐसा नहीं है ? स्वर निकला, उड़ा और धीमे २ जगतकी झाडियोंमें बहता–बहता अस्त हो गया। अकेला या जोडेसे ? उत्तर दो ए जगतके लोको ! अपना-अपना अलग-अलग उत्तर दो जीवनके इस महा प्रश्नका !

सांझकी शीतलता आई और गई। पश्चिम दिशाके तमतमेहेके रंगके ऐसे बादलों कीसी धक धकती आगकी भट्टियाँ मेरे अन्तरमेंभी जला गई।

सध्याके ताने-बाने गुथा गुथा कर रात पडी और मेरेभी जीवनका दिन अस्त हो गया। जिन्दगीका नाटक समाप्त होता हुआ जान पड़ा और अखीरी काला परदा गिरा। विश्वलीला का पार आया हुआ जानपड़ा और काले बादलोंकी अभेद्य झालरें चारों ओर लटक गई।

परन्तु विश्वलीलाका पार नहीं है। दिन आँया और रातका चँदवा तना। चँदवेमें असख्य चादनिया चमकती हुई प्रगट हुई। जगतमेंसे तेज अस्त होताही नहीं है यह मुझे पीछेसे जान पडा।

कहा जाता है पुरुष स्त्रीको बनाता है और स्त्री बनाती है पुरुषको। मुझे यह मालूम नहीं है कि मैंने ऐसा क्या बनाया जो उषामें न था परन्तु यह तो मुझे मालूम था कि उषाने मेरा प्रारब्ध लिखा था और चिरकालका लिखा था। मै अपने प्रारब्धको पढता विचारता और अनुभव करता हुआ पचवटीमें बैठा था।

जगत पर रात जमती जाती थी।

पञ्चमीके चन्द्रमाके अस्त हुए बाद मोडी रातमें एक रथ पूर्वकी ओरसे आया और पश्चिममें गया। सोनेकी शिखाओंके ऐसी चारों ओर मशालें चल रही थीं। **हिरण्मयेन पात्रेण**-वाली ऋचा मुझे याद आई। घूघरवाले बैल मतवाली चालसे चल रहे थे। रथचन्द्रके झाझर झमकते थे। रथपर ध्वजा थी परन्तु फरफरा न रही थी। उसकी पटलिया सम्पुटित होकर लटक रही थीं। छायाकी जानके ऐसा, भूतावलीकी सवारीके ऐसा रथ अधेरेमें हाकर आया था और अंधेरेमेंही गया भी।

रथके आसपास उषाके पिताके पारिषद थे। मुझे मालूम हुआ कि उषाको मझरात में परनाकर पहुचानेको जा रहे है। रथ उषाके योग्यही था। सारा समारम्भ मेरे साम्हने आया तो एक नयन—खिले हुए कमलकी टूट पड़ी पखडीके एसा, सारे तारामण्डलमेंसे खिर पड़ी हुई

एक तारिकाके एसा–रथमेंसे मैने देखा देखा न देखा। गिरती हुई बिजलीके ऐसी क्षणिक किरणरेखा बना कर वह अस्त हो गया।

उस वसन्त पञ्चमीकी मझरातमें उषा मेरे जीवनमें सदाके लिये अस्त होती हुई जान पडी।

नरके आत्मामें नारीकी भूख है, नारीके आत्मामें नरकी प्यास है। हमारे ये भूख प्यास शान्त न हुए थे। उषा उगी और हाथमें लेनेका प्रयत्न करते उर्वशीकी माति आकाशमें उड गई-सी जान पडी।

परन्तु मानवी! तुझ में सुर और असुर दोनों है। उन्हें परखना और फिर, स्वागत करना या निकाल देना।

पुरुषोत्तम का लीला विस्तार प्रकृतिसे है और प्रकृतिके सौभाग्यका विकास पुरुषोत्तम से है। नरनारीके परस्परके अन्तत-अखण्ड गुरुत्वाकर्षणके भेद इसी प्रकार के है, प्राकृतिक हैं, चिरस्थायी है, निरवधि हैं, विश्वके नियोजनमें–विराट्के क्रीडनमें सर्वसचारी हैं। उषाकी आखडलियोंमें भी गुरुत्वाकर्षण था। मेरे जीवनके सबके-सब झरने इस सागर की ओर ही बहते थे। उषा! तू मेरा सागर है और मेरे जीवनकी नदियोंके अशेष जल तुझमेंही आकार विश्राम पायेंगे। परन्तु ओ मेरे सागर! तू है कहा? किसकी अञ्जलिमें समागया? मेरी फुईयों या झरोंको तू न झेले तो मेरा पानी महाजगलीरणमें मैला होगा।

अंधेरी रातमें, स्मशानमें जैसे आग भडकती है वैसेही उस मझरातको मेरे आशाके स्मशानमें तरङ्गोंकी झालें उठाता हुआ मैं पञ्चवटीमें बैठा था।

मैने ऐसा क्रम स्वीकार किया था कि कोई पर्वतराजके शिखर पर खडा होकर बिजलीको पकड़नेके लिये अन्तरिक्षमें छलाग न मारता हो। परन्तु आकाशके गुम्बजको तोड़कर अनन्तकी गहराईमें विद्युद्बाण उतर पड़े वैसे उषा! तू सिसकती-सिसकती सिसक गई, अनन्तमें उतर गई। अनेक रत्नों

सध्याके ताने-वाने गुथा गुथा कर रात पडी और मेरेभी जीवनका दिन अस्त हो गया। जिन्दगीका नाटक समाप्त होता हुआ जान पड़ा और अखीरी काला परदा गिरा। विश्वलीला का पार आया हुआ जानपड़ा और काले बादलोंकी अभेद्य झालरें चारों ओर लटक गईं।

परन्तु विश्वलीलाका पार नहीं है। दिन ऑथा और रातका चँदवा तना। चँदवेमें असख्य चादनिया चमकती हुई प्रगट हुई। जगतमेंसे तेज अस्त होताही नहीं है यह मुझे पीछेसे जान पडा।

कहा जाता है पुरुष स्त्रीको बनाता है और स्त्री बनाती है पुरुषको। मुझे यह मालूम नहीं है कि मैंने ऐसा क्या बनाया जो उषामें न था परन्तु यह तो मुझे मालूम था कि उषाने मेरा प्रारब्ध लिखा था और चिरकालका लिखा था। मै अपने प्रारब्धको पढता विचारता और अनुभव करता हुआ पचवटीमें बैठा था।

जगत पर रात जमती जाती थी।

पञ्चमीके चन्द्रमाके अस्त हुए बाद मोटी रातमें एक रथ पूर्वकी ओरसे आया और पश्चिममें गया। सोनेकी शिखाओंके ऐसी चारों ओर मशालें चल रही थीं। **हिरण्मयेन पात्रेण**—वाली ऋचा मुझे याद आई। घूघरवाले बैल मतवाली चालसे चल रहे थे। रथचन्द्रके झाझर झमकते थे। रथपर ध्वजा थी परन्तु फरफरा न रही थी। उसकी पटलिया सम्पुटित होकर लटक रही थीं। छायाकी जानके ऐसा, भूतावलीकी सवारीके ऐसा रथ अधेरेमें हाकर आया था और अधेरेमेंही गया भी।

रथके आसपास उषाके पिताके पारिचय थे। मुझे मालूम हुआ कि उषाको मझरात में परनाकर पहुंचानेको जा रहे है। रथ उषाके योग्यही था। सारा समारम्भ मेरे साम्हने आया तो एक नयन—खिले हुए कमलकी टूट पड़ी पखडीके एसा, 'सारे तारामण्डलमेंसे खिर पड़ी हुई

एक तारिकाके एसा–रथमेंसे मैंने देखा देखा न देखा। गिरती हुई बिजलीके ऐसी क्षणिक किरणरेखा बना कर वह अस्त हो गया।

उस वसन्त पञ्चमीकी मझरातमें उषा मेरे जीवनमें सदाके लिये अस्त होती हुई जान पड़ी।

नरके आत्मामें नारीकी भूख है, नारीके आत्मामें नरकी प्यास है। हमारे ये भुख प्यास शान्त न हुए थे। उषा उगी और हाथमें लेनेका प्रयत्न करते उर्वशीकी भाति आकाशमें उड़ गई-सी जान पड़ी।

परन्तु मानवी! तुझ में सुर और असुर दोनों है। उन्हें परखना और फिर, स्वागत करना या निकाल देना।

पुरुषोत्तम का लीला विस्तार प्रकृतिसे है और प्रकृतिके सौभाग्यका विकास पुरुषोत्तम से है। नरनारीके परस्परके अन्तत-अखण्ड गुरुत्वाकर्षणके भेद इसी प्रकार के है, प्राकृतिक है, चिरस्थायी है, निरवधि हैं, विश्वके नियोजनमें–विराट्के क्रीडनमें सर्वसंचारी है। उषाकी आखढलियोंमें भी गुरुत्वाकर्पण था। मेरे जीवनके सबके-सब झरने इस सागर की ओर ही बहते थे। उषा! तू मेरा सागर है और मेरे जीवनकी नदियोंके अशेष जल तुझमेंही आकार विश्राम पाँयगे। परन्तु ओ मेरे सागर! तू है कहा? किसकी अञ्जलिमें समागया? मेरी फुईयों या झरोंको तू न झेले तो मेरा पानी महाजगलीरणमें मैला होगा।

अंधेरी रातमें, स्मशानमें जैसे आग भड़कती है वैसेही उस मझरातको मेरे आशाके स्मशानमें तरङ्गोंकी झालें उडाता हुआ मैं पञ्चवटीमें बैठा था।

मैने ऐसा क्रम स्वीकार किया था कि कोई पर्वतराजके शिखर पर खड़ा होकर बिजलीको पकड़नेके लिये अन्तरिक्षमें छलाग न मारता हो। परन्तु आकाशके गुम्बजको तोड़कर अनन्तकी गहराईमें विद्युद्बाण उतर पड़े वैसे उषा! तू खिसकती-खिसकती खिसक गई, अनन्तमें उतर गई। अनेक रत्नोंके

सब कणोंसे भरी हुई ससारकी हवाईके ऐसी तू अन्तरिक्षमें उड़ी और आसमानमें समागई। पर्वतशृङ्गकी नोकपर किसी अकेले वृक्षकी भाति मैं अकेला ही—गगनकी गहनतामें आख डालता हुआ और गगनकी गली गलीमें तुझे खोजता हुआ—खडा हू । वसन्त पचमीका यह आजका बीता हुआ दिन पीछा लौट कर आवेगा तो तूभी पीछी पधारेगी। परन्तु तोभी—तोभी उषा ! निराशाके तरगोंमें उछलती हुई अपनी किश्तीमें मैं बाट देख रहा हू तेरी !

रसविमानमें विगमन करती हुई तु चन्द्रलोकमें अमृतचन्द होकर जा बैठी होवे तो मै प्रभुसे प्रार्थना करूं कि वह मुझे पृथ्वीलोकमें अशान्त और हृदयमें जलता हुआ उदधि बनावे जिससे तु उगे कि मै उछलूं। मेरे छींटे तुझे छू न पायगे तथापि अर्घ्यके जलकण तुझे समर्पित करूगा। मेरे तरंग तुझे झुलायगे नहीं किन्तु तेरी छायाको झेलकर ऊर्मिमालाके झूलेमें झुलाऊगा। तुझे देख देखकर तेरी पूर्णिमाको निहार निहार कर मेरा हृदय उछलेगा और तूफान मचावेगा। निराशाही मेरी आशा है, मृत्यु ही मेरा जीवन है तू नहीं है यही मेरे आत्माका अवलम्बन है।

गई, तू गई, उषा ! सदाके लिये गई मेरे जीवनमेंसे । परन्तु पृथ्वी परसे तो नहीं गई। तो ये मृत्युके एसे प्रलाप क्या है ? पर्वत पडगये तेरे और मेरे बीचमें, परन्तु तु चन्द्रलोकमेंभी न गई और सुर्यलोकमेंभी नहीं गई। पृथ्वीलोककी किसी बगीचीमें, किसी फुलवाडीमें टुंहिया तू उडरही है ! कल्याण हो तेरा, यहा कि वहा जहा हो वहा कल्याणि ! तेरा कल्याण होवे ! मै भूखा हू परन्तु तुझे तृप्ति प्राप्त होवे ! मैं अपूर्ण हू परन्तु तेरी सब कामनायें छलकती हुई परिपूर्ण होवें ! मेरे प्रारब्ध—कुकुमाक्षरोंसे तेरे द्वारा लिखाते हुए मेरे सौभाग्य—प्रारब्ध अधूरे-के-अधूरेही मिट गये, परन्तु तेरे तो सौभाग्य अमृतके अक्षरोंसे प्रकट होवें ! नित्यतृप्त निराशाके महारणमें भले ही मैं भटकू आशा की हरीभरी आम्रवाटिकामें प्रेमकी टूहि सदा

तू उठना उषा ! जबतक नरके अन्तरमें नारीपूजा है, जबतक पुरुषोत्तम प्रकृतिधारी है, तबतक, कालके अन्ततक, चन्द्र और जलधि सूर्य और सूर्यप्रभाके आयुष्यतक, ओ मेरी जीवनप्रभा ! तुझे याद करूगा, पूजूगा और तेरी बाट देखूगा। आना, जगतमें नहीं तो अनन्तताके किसी तीर पर आना करमें नहीं तो उरमें आना, आना आयुष्यके उद्धारकी इस परम भूमिकामें। फूल कुम्हलाता है परन्तु सुवासना अनन्त में फैल-जाती है वैसीही तू है ! आस्था है कि तू आवेगी। अंधेरी रातकोभी भेदकर उषाका उदय होगा ऐसी परम श्रद्धा है। इसी अन्धश्रद्धामें उषा! आयुष्य बितारहा हू। आना इस आयुष्यके किनारे, किसी समय, किसी वेशमें, कुछ कहती हुई। मै हू पर नहीं हू तू नहीं है पर है। यह 'नहीं', 'है' से विशेष है। उषा! तू विशेष है तो मेरी अपूर्णताको पूर्ण करना! ब्रह्माण्डमें परब्रह्म अवतार लेते है वैसेही ओ परब्रह्मकी सौन्दर्यकला! मेरे जीवनमें तू अवतीर्ण होना।

पञ्चाग्निकी धूनी जगाकर योगी तप करनेको बैठा हो इस तरह उस रात मेरी पाचो इन्द्रिया जल रही थीं और मैं पञ्चाग्निके बीचमें तप करता हुआ बैठा था। और धुवाके समान इस तरहके गुव्वार मेरे अन्तरमेंसे निकल रहे थे।

* * * *

वाचक! ऊपरके ये अवतरण मेरी कविताकी नोंधवहीमेंके हैं। इन्हें पढ कर क्या तुझे ऐसा नहीं जान पडता कि प्रेमका परम महाकाव्य लिखा जाना बाकी ही रह गया है? मेरा और तेरा भी?

मुझे ऐसा भास होता था कि इस अघोर रातका प्रभात उगेगा ही नहीं, परन्तु प्रभातका उदय हुआ और बडाही अद्भुत हुआ।

"नजाने जानकीजाने प्रभाते किं भविष्यति" इस पद्यार्द्धको लोग कलके अशुभके लिये आज व्यवहारमें लाते हैं। अकस्मात और

चमत्कार क्या अशुभ ही होते है ! ससारी इस बातको क्यों भूल जाते है कि गहन और अज्ञेय सब खराब ही नहीं हुआ करता ?

दूसरे दिनका प्रभात हुआ । मेरी खिडकीमें कोयल बोल रही थी, पलङ्गपर फूल बिखेरे हुए थे। प्रभातका प्रकाश खिलखिला रहा था। वातावरणमें खेलती हुई बसन्तको मैंने देखा।

वाचक ! कभी तूने गोता लगाया है ? सरोवरमें स्नान करते हुए या नदीमें कूदते हुए कभी तो तू गहराईमें गया होगा ? जब जलके भीतरसे तू बाहर आया तब तुझे कैसा लगा था ? ससारसमुद्रके महाजलमें उषाने और मैने पातालगामी गोता ही न खाया हो इस प्रकारका हमें पहले पहले मालूम हुआ।

परन्तु मृत्युमें भी जीवन रक्खा गया है। दुनिया जिसे मृत्युका पान करना कहती है उसे अमर अमृतपान करना कहते है। इस प्रकार की घटना जिसने घडी है उस प्रभुको कितना कृपालु कहना चाहिये ?

आज भी इस प्रसगके स्मरण जब जागरित होते है तब हमें ऐसा भान हो जाता है कि ससारने तो हमें अधर फैंक दिये थे परन्तु उषाके पुण्यसे हमें अधर-के-अधर हरिके विमानोंने झेल लिया और हम उनमें सवार होकर अपने स्नेहस्वर्गमें सिधारे।

सन्त जन मोतीके गोतेखोरों की महिमा गाते है। हम भी स्नेहके गोतेखोर होकर निपटे।

अगाध अम्बोधिके अम्बुमें हम फैके गये, बचेंगे या नहीं इस आशाको छोड दिया, परन्तु मोतियोंकी सींपोंको भर भर कर हम अपने उपवनके किनारे पर आ लगे। मोतियोंके महासमुद्रमें प्रारब्धने हमें गोता खिलाया था।

दूसरे दिनका प्रभात हुआ और सूर्यनारायणके उदय होनेके बाद मैं उठा। उस समय पासके मन्दिरमें कोई तिथि पूछ रहा था। ज्योति-

षीने उत्तर दिया वसन्त पञ्चमी। पूछने वालोंने फिर पूछा बसन्त-पञ्चमी तो कल थी न ? ज्योतिषीने कहा दो पञ्चमी थीं उदयात वसन्तपञ्चमी तो आज है।

मुझे ऐसा मालूम हुआकि अमृतकी बरसात हुई। मेरे आत्मापर संजीवनके बिन्दु गिरे और शवकी नाडियोंमें लोहू धबकने लगा।

दो वसन्तपञ्चमी बताने वाले इस ज्योतिषीपर मैं आफरीन हो गया। कोई ज्योतिषी-फरीस्ता आसमानसे आवे और कहे कि उषायें भी दो हैं ?

मैंने ताककर देखा तो वायुमें वसन्त थी, तेजमें वसन्त थी आकाशमें वसन्त थी, रास्तेपर आते जाते पुरजनोंके मुखपर वसन्त थी।

प्रभात होता ही था कि उषा की माता आई और मुझे देख कर मेरी मातासे कहा कि मैं तो देवके दर्शनको आई थी। उसके गये बाद मेरी माताने मेरे पिताको उषाके पिताके पास भेजा। वे वहा कौतुकके साथ गये और मुस्कराते हुए पीछे पधारे। उनके पधारते ही महोल्लेमें और स्नेही सम्बन्धियोंमें शकर और गुड बाटनेके लिये मेरी माता बाहर चली।

उत्थापन की दुदुभि बजे इस तरह धमधम करती हुई चन्द्रिका मेरे कमरे पर चढ आई। 'भाई दूजके दिन तिलक किया था और तूने माना न था। ले यह उषाका तिलक। तेरे ललाटमें जकड़ी हुई उषा खोकर कहा जायगी ? तेरे भविष्यमें उषा अस्त न होगी। और मैंनेही पुष्पोंसे बधाया था तब तो पडा पडा घोर रहा था।'

चान्द्रिका का श्वास छातीमें माता न था हर्ष तो उभर कर मेरे सारे कमरे में उछल रहा था।

मैं कुछ न समझ सका। आश्चर्यचकित नयन और अचभेकी आवाजसे मैने कहा, 'परन्तु चन्द्रिका ! कालसागर में वह सौभाग्य तो कल डूब गया। उषाके तो लग्न हो गये और वह ससुराल कोभी गई।'

'वह तो छाया उषा थी। उषाका विवाह तो आज होगा–तेरे साथ और ससुराल कोभी आवेगी–तेरे घर' गई वह तो उषाकी अलाबला थी। मा से उषा की माता मिल गई है और पिताजी उषा के पितासे मिल आये है। 'आज चढना जान लेकर जगतको जीतने के लिये और जीत कर ले आना सुन्दरियोंकी सौन्दर्यरानीको' यों कह कर उसने धीमेसे मेरे कपोल पर चुटकी भर ली।

फरिश्ता नहीं तो प्रभुकी फरिश्तन उतरी मेरी ब्रह्मलोकमेंसे और बोली कि वसन्तपञ्चमी की तरह उषायें भी दो है। मैने इस देवी के पैर छूये और उसने मेरी बलैया लीं।

उस दिन उषाके घर फिर विवाहोत्सव हुआ और उषा के विजय-वाद्य बजे।

अमृत के चौघडिये में हमारे घरभी नकारे बजने लगे। मेरी माता तो हर्षके मारे सुधभूल हो गई। तुरत उषाको नोता और स्नेहकी गोदमें बिठा कर शकर खिलाई और उसे सजाया।

फिर मेरे मन्दिरमें कोटि कोटि भानुका उदय हुआ। मेरी दृष्टिकी किरण डोरीपर उषा आई और प्रकाश फैला दिया। उषाकी मांगमें मैने नवरत्न का सीस फूल चढाया, उसके कंठको करलताने बधाई दी, उसे हृदयके राजसिंहासन पर बिठाई और सौभाग्यदेशमें चुम्बनका विजय-चन्द्रक किया। उषाने कुछ कमी न रक्खी मेरे सारे मुखपर चुम्बनके पुष्प-ही-पुष्प–से बरसाने में लग गई। मैने भी उसके मस्तक पर, रस-मुकुट पहना रही होऊं इस तरह सारे मस्तकपर, चुम्बन किये।

मैने कहा दो वसन्तपञ्चमी तो ज्योतिषी महाराज ले आते है, परन्तु दो उषा कौनसे ज्योतिषी महाराज लाये ? उषा ! कलका स्वप्न था या आज का है ?

उषाने मुखपर चुम्बन झेलते-झेलते कहा दोनों स्वप्न हैं। जिन्दगीही स्वप्न है, परन्तु—वह मुझे तेरी रजाई में लेना है।

लटके करती और खड खड हसती चन्द्रिका आई। पूरी तो नहीं परन्तु कुछ सज्जनता धार कर हम मर्यादा में आये।

'उषा तू भी अजब ही है हो।' चन्द्रिकाने उपोद्घात किया। तूने भी लक्ष्मी की लालसा खूब ही पूर्ण की। उसे लक्ष्मीकान्त पसन्द था, लक्ष्मी जब अपनी नन्दियालमें सरोवर पर पानी भरनेको जाती और लक्ष्मीकान्तको पानीमें तैरता हुआ देखती तमीसे वह उसकी निगाहों में समा गया था। परन्तु लक्ष्मी भी बहादुर निकली! चौरीमें कपती-कपती आई परन्तु आनेके बाद शिलाके समान स्थिर होकर बैठी। तेरी माने भी इसे क्या न पहचाना?'

चौरीमेंसे उठी तब तो पहचाना परन्तु पाणिग्रहण हो चुका था, भूल सुधारी नहीं जा सकती थी। लग्नमडपमें से लक्ष्मीके लग्नसे निपट कर उतरे बाद मेरी माताने पिताको भी खबर की। कौतुक और खिजवाटके उभरे शान्त हो जाने के बाद पिताने लक्ष्मीके पिताकोभी समझाया, कनकपुरके नगरसेठका पुत्र जामाता के तौरपर किसे पसन्द न पड़ेगा। और लक्ष्मीकी समति के बिना यह सासारिक षड्यन्त्र रचा भी कैसे जा सकता है? ऐसा समझ कर ससारके चतुर ये वृद्धजन हँस पडे और घडी भरके बादही शास्त्रीय स्वयम्बर विधानका अनुसरण करनेवाली इन पुत्रियोंकी, कुछ शरमाते-शरमाते, प्रशसा भी करने लगे। लक्ष्मीके पिताने कलका खर्च देना चाहा परन्तु मेरे पिताने लेने की 'नाहीं' की और कहा कि लक्ष्मी भी उषाकी सहेली है, मेरे लिये उषाके ऐसी ही है। बरातके जानेके बाद दोनों वृद्धोंने नगरसेठसे बात की। लडकियों की ठगाईमें आजाने पर तीनों वृद्ध कुछ झेंपे, परन्तु भूल सुधरने योग्य न होनेसे आश्चर्य चकित हो कर हँस पडे। नगरसेठने कहा 'ना, सेठानी

कहती थी कि कन्या तो रूपकी ढली है, चौकमें सब हुआ है, मै झरोखेकी जालियों मेंसे देख रही थी।'

मैंने कहाः तूभी जबर्दस्त है उषा ! दुनियाके उस्तादोंकोभी तूने मात किया।

'तब क्या एककी चूमी हुई दूसरेको विवाह सकती है ? '

उषाके इस सरल प्रश्नसे मै चौंका और सारा ससार मुझे चौंकता सा जान पडा। इस प्रश्नमें मुझे कईएक सासारिक विधानोंके दुर्गम दुर्ग टूटते और प्रेमधर्मके परम मन्दिर बनते हुए देख पडे।

मैंने उत्तर दिया ना, उषा ! दुनियाको यों नहीं छूया जा सकता परन्तु तेरा जीवन तो जयका है ही !

उषाने कहा तू रोज मुझे कहा करता था कि 'संसारको सहलेनेको नहीं, परन्तु उषा ! तू जीतनेको जन्मी है।' मुझे फँसानेको ससारने जाल फैलाई थी। नित्यकी तेरी इस विरदावलीने मुझे जिताया। इस तेरी जयमन्त्रणामें से मेरे जयका जन्म हुआ।

'और उषा तूने क्या नहीं जीता' चान्द्रिका बोली। 'पाठशालामें भी तू रोज जीतती थी, बगीचे में जीतती थी, पनघट पर जीतती थी, और जीवनमेंभी जीत लिया मेरे वीरेको और देशभरमें वजा दिया विजयका ढंका। माई और भाभी दोनों जयवाले होतो मेरे दोनों भतीजों के नाम जय विजय रक्खूगी।

हमारे जीवनका प्याला अमृतसे भरा जाता था।

हमारे चौकमें भी मेघाडम्बरके ऐसा चँदवा बँधा। नीचे सुन्दरियोंकी बिजलिया चमकने लगी। परन्तु चान्द्रिकाकी चमक बडी ही अनोखी थी मानो इन्द्रधनुष्यकी लता ही न हो !

चढते दिन बिंदोरी उषाके घर गई। नगर भरमें उपाकी चमत्क। जयकथाके डके बज रहे थे। इससे गली गली व चौक चौकमें

किस वर के लिये ससार को उलट पुलट कर दिया उसे निहारने को नगर जनोंको झुड-के-झुड इकठे हो रहे थे। उस दिन मै तो ऐसा हो रहा था मानो नगरका कौतुकही न होऊ। सजनसजानियोंके स्मितपरिमलमें तैरता हुआ मै उषाकी हवेलीपर पहुचा। उषाकी माताने हँसते-हँसते आदर दिया और भोजाईनें कुकुमाक्षत लगाते-लगाते कहा कि नित्य बाहरसे बुलाया करते थे अब घरमें आकर बुला जाया करना।

महमान नहीं परन्तु राजरानी के तोर पर उषा उस रातको मेरे मन्दिर पर आई। रससौन्दर्यकी अघिष्ठात्रीकी, और हम दोनोंके सौभाग्यकी देवीकी उस रातको हमारे मन्दिरमें प्रतिष्ठा हुई।

मेरे जीवनमें भी अनस्त उषा सदा के लिये उगी।

सजीवनकी ऋतु देखी है? कुम्हलाई हुई क्यारिया कैसी खिलती है। वसन्त ऋतुके प्रारम्भमें फूटते और प्रफुल्लित होते फूलोंको पौधोंको तो देखा है न? हम भी कल कुम्हला गये थे परन्तु आज ऐसी सजीवनकी ऋतु बैठी कि अबतक वह तप रही है। जीवनभर की हमारी वसन्त उगी और नित्यनित्य हमारे कोंपलें निकलती हैं। पखडिया खिलती है। आयुष्यका आम हमारा मोरोंसे लचक रहा-नमरहा है। उषाकी बाधी हुई सौभाग्यचूददीके ऐसा, विविध पक्के रगोकी भातिसे शोभित हो रहा है। फुलवाडी के छायावाले मार्ग पर जैसे फूल फैले हुए होते हैं वैसेही हमारे जीवनपथ पर फूल बिछ रहे हैं।

जीवन असत् नहीं है, सत् है। जीवन निद्रा या घुमेरी नहीं है परन्तु चित् है परम चेतना है। घडी भरका हास नहीं है, परन्तु आयुष्यका आनन्द है। इन सत्योंकी प्रतीति करानेके लिये इस वसन्तकी वसन्तपञ्चमीकी चान्द्रिकामें रसानन्द की रूपकला को धारण करने वाले सच्चिदानन्दजी मेरे मन्दिरपर पधारे और मैंने उन्हें आत्माके रससिंहासन पर पधराया।

सकल रसिकोंके रससिंहासन पर ऐसी रसज्योति सदा सर्वदा झलमलाती रहो !

वैजयन्ती फूलमालाके समान मेरे कंठमें झूलते–झूलते उषाने कहा: वृन्दावनमें सूरत या झालरापाटनमें ही नहीं, परन्तु पृथ्वीके नगर नगरमें रसके मंडपके ऐसा गोपीपुरा है, मेरे कान्हा ! गोपी और कान्ह की कथा तो कृष्णावतारसे भी प्राचीन है, सृष्टिके इतनी ही प्राचीन है, सृजन–जूनी है ।

कुसुम और केसर के छींटोंसे छींटे हुए वसन्ती वागे सजकर वसन्तमूर्तिके ऐसी उषा शोभा दे रही थी और कान्हगोपीकी तरह ही अमृत चन्द्रिका में जीवनवसन्तकी इस वसन्तपञ्चमीको हमने मनाया ।

बिदाई

वाचक ! इस तरहका कुछ हमारी कथाका विस्तार है। तो अब बिदा ? यह बात ऐसी है कि–'यस्यान्त न ययु सुरासुरगणा'–सब देशके सब भाषाओंके सब कविवरोंने ये गीत गाये है और गावेंगे परन्तु बात न पूरी हुई और न होवेगी । किसी किसीने इन गीतों को न गाने के सोगन्द ले लिये, उनेमेंसे बहुतसों के ये सोगन्द बरफके महलोंकी भाति पिघल गये । वाणीका पार नहीं है, वैसेही इस बातका भी पार नहीं है । तो अब बिदा ?

और इतनेमें भी तुझे कितनाएक क्या पागलपन न जान पड़ा ? आज मैं पढता हूं तब मुझे भी जान पढता है । तू तो जिन्दगी भर चतुर ही रहा है न ? उषा कहती है कि आज हमारा शरज्जल है, नीतारे हुए और धीर गभीर: परन्तु अन्तरिक्षसे रसवर्षा होती थी और हमारी नाके–

योंमें पूर उछलते थे उस समय नाडिया पागल थीं या चतुर ? वाचक तूने अपनी लैला का मजनूपन किया हो तो हमें भी माफ करना। जब जब उषा इसे पढती है तब तब मीराका भजन गाती है कि

‘ गैला हम भले हुएरे
हमने गैलामें गुण पाया ’

उषा कहती हैं कि कितने ही पागलपन में स्यानपन होता है।

और सच कह वाचक! यह तेरी बात है या मेरी? तूने कुछ ऊडा देखा? देशदेशके वेशियोंकी वस्त्रपरिधानकी विविधतामें मानवमूर्तिया भी विधविधकी है! और मानवमूर्तियोंमें उछलता हुआ चेतन क्या विधविध का है? एक आमकी कैरिया घाटमें छोटी बडी होंगी परन्तु गुणधर्म रसविभूतिसे पृथक् पथक् नहीं हो सकतीं। वाचक! गहरी निगाए डाल कर देख! पगडी टोपी या फैटा न निहार, परन्तु पगडी टोपी या फेटे के अन्दर जो शीर्षकुम्भ है उसे देख और कह वह अलग अलग है? या उस शीर्षकुममें मस्तिष्क-चेतन अलग अलग है? या बुद्धिकुमके मस्तिष्क व्यापार के धर्मकर्मके नियमसिद्धान्तोंका न्यायशास्त्र, देशदेश, वेशवेश, या प्रजाप्रणालिकाके विचारसे अलग अलग हैं? नहीं बुद्धिके न्यायशास्त्रकी भांति ही रसका न्यायशास्त्रभी सम्पूर्ण मानवजातिके लिये एकही है। इस वार्ताके प्रसग में नहीं तो क्या इसके प्रसगोंकी रसभावना में तेरी कथा नहीं है? वेदान्त सच्चा हो या झूठा मै वेदान्त कथा समझानेको नहीं बैठा हू। परन्तु—अह ब्रह्मास्मि—के साथ ही—तत्त्व मसि—का वाक्य गुथा हुआ है, और उन दोनोंमेंसे—सर्वं खल्विद ब्रह्म का सर्वतोमुख महावाक्य सूर्यके पीछे तेजके ऐसा प्रकट है यह वेदान्ताचार्योंका वचन है। रसके दर्शनमें इस वेदान्तवादकी श्रेणियों का मन्थन कर। इन सूत्रोंमें जितना सत्य है उतना सत्य तुझे प्राप्त हो जायगा। इन सूत्रोंमें जितना असत्य है उतना तुझे असत्य मिल जायगा। परन्तु

इन वेदान्तवाक्योंको रसशास्त्रमें गठित करके फिर कह कि यह कथा मेरी है, तेरी है, या विश्वम्भर की है ?

जवाहिरातको खुला रख देनेसे रज चढती है, और कितनेही स्मरण तो जवाहिरों सेभी विशेष मूल्यवान होते है । प्रियस्मरणके उन परम पवित्र गहरे भंडारोंके धनी वाचक ! तू उन भंडारोंको न खोल, और मै भी नहीं खोलता । उरमन्दिरके देहसदमें तो एक प्रियजन के ही प्रवेश करनेका अधिकार ह । स्नेहकुजकी इस घटामें तो केवल प्रियतम-काही ठिकाना है । अन्दर जा और पा जिससे सारा ससार कम है ।

देहिनां हि यथा देहे कौमार यौवन जरा, प्रभात मध्यान्ह और सध्याके समान जीवन के दिनके त्रिकाल श्रीकृष्णचन्द्रने गीता में बताये है । कौमार जीवन की आशा है, अविकास हे, कलिकासम्पुट है । जरा जीवन का विश्राम है, सूखापन है, जीर्णता है । जीवन के दिनका मध्यान्ह यौवन है, आयुष्यके चन्द्रकी पूर्णिमा यौवन है, ससारयात्रा के सवत्सरमें की सजिवनी वसन्त यौवन है ।इस अवस्थामें मनुष्य के आमों पर मौर आते है और कोयलें बोलने लगती है । **ऋतूणा कुसुमाकरः**-की मैंने यह कथनी कही है । वन में एक समय एक कोकिला इस कथा के काव्य गाती थी । मैने कुछ समझे कुछ बे समझे-अधूरे समझे उस के शब्दोंको चुनचुन कर यह कथा कही है । कमिया जो कुछ हैं मेरी है और खूबिया उस कोकिला की हैं ।

खिलावे उसका सदाका यौवन है, न खिलावे उसका कौमार है और सँभाल कर रखनेवाले का यौवन नित्य हे । न सभाले उसकी जरा है । उत्क्रान्तिवाद कहता है जिसे आवे उसका नित्यविकास है और नित्यविकास यह नित्ययौवन का लक्षण है । देवाङ्गनाओं को रसमीमासक नित्ययौवना वतलाते हैं। पृथ्वीवासी देवाङ्गनाओं के लिये भी ऐसे विशेषण-ठीक हदतक-क्या नहीं दिये जा सकते ?

वाचक ! तू सयोगी है या वियोगी ! तू स्मितभोगी है या स्मितस्मरणभोगी ? तू स्नेहयोगी तो हे न ? इन धूनी का उपासक तो है न ? उषा कहती है कि प्रिय जन के लिये सयोग और वियोग दोनों प्रियतम के स्नेहयोग ही हैं, और यह बात उसकी सही हे। तू विचार कर देख, तुझेभी ठीक जान पडेगी। रस सत्योंको जिस तरह उषा बतलाना जानती हे मै नहीं जानता। वह कहती है कि नित्यसयोग या नित्य वियोग किसी के कभी देखे भी गये है ? आरर इस भव को देखेगी या परभव कोभी ? या सब भवोंको ? उषा कहती है कि सयोग और वियोग ये शब्द स्नेहियोंके देह को लक्ष्य कर कहे जाते हुए शब्द हैं आत्मापर नहीं है और इसी से चेतनसे स्थूल जितना गौण है उतनेही रसशास्त्रमें–उषा के रसशास्त्रमें वे गौण है। कोई कोई समय तो उषा इतना अद्भुत बोलती है कि साक्षात् स्नेहकी देवी स्नेहसूक्तकाही उच्चारण न कर रही हो ? उषा कहती है कि सयोग और वियोग गुणधर्मसे भिन्न नहीं है किन्तु परिणामधर्मसे भिन्न हैं। महासतीने आसमान में सूर्य को रोक दिया और महायोगीश्वरने चन्द्रमाको, परतु छह महिनेके लिये ही ! इसके बाद ? इसके बाद श्रीकृष्णचन्द्रकी भी रासपूर्णिमा अस्त हुई या तपी ?–आगमापायिनो नित्यास्ताँस्तितिक्षस्व भारत ! गीता में ऐसा गान किये बाद गीताकार की वह पूर्णिमा नित्य कैसे निभ सकती थी ? उस पूर्णिमाका अस्त हुआ परतु रासपूर्णिमा के वे भाव क्या अस्त हुए ? वे भाव अस्त होकर चेतन का विरह हो जाय तब पूर्णिमा का अस्त होकर नित्यविरहकी अमावास्या उग सकती है ? स्थूल और चेतन के विरहभेद को कालिदास समझता था, और इसी से दुष्यन्त और शकुन्तला के वियोग को केवल स्थूलवियोग न बना कर महाकविने चेतनवियोग की कल्पना की और इन स्नेहियोंकी स्नेहकथामें विचित्रतम करुणारस भर दिया प्रकृतिके महलमें और प्रकृतिके महल–

इन वेदान्तवाक्योंको रसशास्त्रमें गठित करके फिर कह कि यह कथा मेरी है, तेरी है, या विश्वम्भर की है ?

जवाहिरातको खुला रख देनेसे रज चढती है, और कितनेही स्मरण तो जवाहिरों सेभी विशेष मूल्यवान होते है । प्रियस्मरणके उन परम पवित्र गहरे भडारोंके धनी वाचक ! तू उन भडारोंको न खोल, और मै भी नहीं खोलता । उरमन्दिरके देहखंडमें तो एक प्रियजन के ही प्रवेश करनेका अधिकार ह । स्नेहकुजकी इस घटामें तो केवल प्रियतम-काही ठिकाना है । अन्दर जा और पा जिससे सारा ससार कम है ।

देहिनां हि यथा देहे कौमार यौवन जरा, प्रभात मध्यान्ह और सध्याके समान जीवन के दिनके त्रिकाल श्रीकृष्णचन्द्रने गीता में बताये है। कौमार जीवन की आशा है, अविकास है, कलिकासम्पुट है। जरा जीवन का विश्राम है, सूखापन है, जीर्णता है । जीवन के दिनका मध्यान्ह यौवन है, आयुष्यके चन्द्रकी पूर्णिमा यौवन है, ससारयात्रा के संवत्सरमें की सजिवनी वसन्त योवन है।इस अवस्थामें मनुष्य के आमों पर मौर आते है और कोयलें बोलने लगती है। ऋतूणां कुसुमाकरः-की मैंने यह कथनी कही है । वन में एक समय एक कोकिला इस कथा के काव्य गाती थी। मैंने कुछ समझे कुछ बे समझे--अधूरे समझे उस के शब्दोंको चुनचुन कर यह कथा कही है। कमिया जो कुछ है मेरी हैं और खूबिया उस कोकिला की हैं।

खिलावे उसका सदाका यौवन है, न खिलावे उसका कौमार है और सँभाल कर रखनेवाले का यौवन नित्य है। न समाले उसकी जरा है। उत्क्रान्तिवाद कहता है जिसे आवे उसका नित्यविकास है और नित्यविकास यह नित्ययौवन का लक्षण है । देवाङ्गनाओं को रसमीमासक नित्ययौवना बतलाते हैं। पृथ्वीवासी देवाङ्गनाओं के लिये भी ऐसे विशेषण-ठीक हदतक-क्या नहीं दिये जा सकते ?

वाचक ! तू संयोगी है या वियोगी ! तू स्मितभोगी है या स्मितस्मरणभोगी ? तू स्नेहयोगी तो है न ? इन घूनी का उपासक तो है न ? उषा कहती है कि प्रिय जन के लिये समोग और वियोग दोनों प्रियतम के स्नेहयोग ही है, और यह बात उसकी सही है। तू विचार कर देख, तुझेभी ठीक जान पडेगी। रस सत्योंको जिस तरह उषा बतलाना जानती है मै नहीं जानता। वह कहती है कि नित्यसयोग या नित्य वियोग किसी के कभी देखे भी गये है ? आज इस भव को देखेगी या परभव कोभी ? या सब भवोंको ? उषा कहती है कि सयोग और वियोग ये शब्द स्नेहियोंके देह को लक्ष्य कर कहे जाते हुए शब्द हैं आत्मापर नहीं है और इसी से चेतनसे स्थूल जितना गौण है उतनेही रसशास्त्रमें–उषा के रसशास्त्रमें वे गौण है। कोई कोई समय तो उषा इतना अद्भुत बोलती है कि साक्षात् स्नेहकी देवी स्नेहसूत्रकाही उच्चारण न कर रही हो ? उषा कहती है कि सयोग और वियोग गुणधर्मसे भिन्न नहीं है किन्तु परिणामधर्मसे भिन्न हैं। महासतीने आसमान में सूर्य को रोक दिया और महायोगीश्वरने चन्द्रमाको, परतु छह महिनेके लिये ही ! इसके बाद ? इसके बाद श्रीकृष्णचन्द्रकी भी रासपूर्णिमा अस्त हुई या तपी ?–आगमापायिनो नित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत ! गीता में ऐसा गान किये बाद गीताकार की वह पूर्णिमा नित्य कैसे निभ सकती थी ? उस पूर्णिमाका अस्त हुआ परतु रासपूर्णिमा के वे भाव क्या अस्त हुए ? वे भाव अस्त होकर चेतन का विरह हो जाय तब पूर्णिमा का अस्त होकर नित्यविरहकी अमावास्या उग सकती है ? स्थूल और चेतन के विरहभेद को कालिदास समझता था, और इसी से दुष्यन्त और शकुन्तला के वियोग को केवल स्थूलवियोग न बना कर महाकविने चेतनवियोग की कल्पना की और इन स्नेहियोंकी स्नेहकथामें विचित्रतम करुणारस भर दिया प्रकृतिके महलमें और प्रकृतिके महल–

वासी आगमापायिन् सर्वभूतसघमें मृत्यु के वियोगमी चेतन-वियोग नहीं है । प्रकृतिमन्दिर के नटनागर की नृत्यलीला और देहके भावप्रदर्शन अनित्य है परन्तु इस रसलीलामें की भावना और कविता, चेतनके बराबर ही नित्य है, अजो नित्यः शाश्वतोयं पुराणो-ब्रह्म है, और ऐसे आयुष्मान् पिताके पुत्रपुत्रियोंके दीर्घ आयुष्य तो होवें-ही-होवें । परमात्त्व तत्त्वके बराबर आत्मतत्त्वके आयुष्य नभी हों परन्तु आत्मतत्त्वके जितने आयुष्य है उतने भाव और रसके आयुष्य तो है ही । अत एव स्थूलके-देहके वियोग की स्नेहयोगी कुछ परवा नहीं करते । अनुभव से उषा कहती है कि हम में वियोगका होना शक्य नहीं है-सम्भव नहीं है ।

उषाका भाष्य सच्चा है और समझ पडेगा, परन्तु देहके परे विचार करनेवाले को । जितनी ऊंचाई पर चढेंगे उतनीही दृष्टिकी विशालता मनुष्योंको प्राप्त होगी ही ।

और विचार कर देख वाचक ! संयोगी या वियोगी, स्नेहयोगी की स्नेहसमाधिमें भावके भेद या रसके भेद कितने और कैसे है ? किसी में भी स्नेहियोंके स्नेह कुछ ज्यादा-कम है ?

उषा मुझसे प्रतिदिन एक प्रश्न पूछती है कि मैने यह कथा लिखी है वैसे ही, कवि और आख्यायिकाकार स्नेहियोंके सवननके ही इतिहास क्यों लिखते है और लग्नके इतिहास क्यों नहीं लिखते ? उषाको सदा इस बातकी कमी जान पडती है । वह बारबार पूछती है कि कवियोंके भावें क्या सवनन ही स्नेह है ? क्या लग्न स्नेह नहीं है ? वाचक ! वाचक ! सच कह दूं ? हमारातो सदा का सवनन ही है । रोज हमारी आत्मा की एक एक पखडी खिलती है और कोटिदल आयुष्यके दिवसके ऐसी समुज्ज्वल हो कर हंसती है । परन्तु उषा कहती है कविकुलकी

भूल मैने इस कहानी के लिखनेमें की है और उषाके इस आरोपके उत्तरमें मुझसे कोई दलील बन नहीं पडती। ऐसा होने परभी कविवेशक बचावके लिये मैं उषाको इस तरह कहता हूं कि ब्रह्माण्डके ब्रह्ममुहूर्तमें ब्रह्मर्षियोंने वेदके कीर्तन किये थे फिर क्यों नहीं किये? ब्रह्माके मुखके सृजनवेद हैं परन्तु विष्णुके मुखके पोषणवेद क्यों नहीं है? ब्रह्मा और विष्णुको दलीलमें उतार तो लाया हूं परन्तु उषाका कहना है सत्य। सवनन स्नेहका सृजन है और लग्न स्नेहका विकास है। उषाका आरोप यह है कि स्नेहके सृजनकी कथा सब कहते है परन्तु स्नेहके नित्यविकास की कथनी कोई क्यों नहीं कथता? मैने उषासे प्रार्थनाकी है कि हमारी इस स्नेह कथाका उत्तर भाग वह लिखे। उषा कहती है कि लिखाना तो वर्तमान ही न है! वह तो भविष्यके सन्मुख परीक्षा देनेके समान है। वर्तमान से उषा लज्जा नहीं पाती परन्तु भविष्य से लजाती है। परन्तु नवोढाकी लज्जाबदलीके रंगमेंसे प्रौढाके पक्के रंग प्रकट होंगे तब, जगतका सौभाग्य होगा तो, हमारी सौभाग्यकथा उषाके हाथसे लिखी जायगी। तेरे समान ही मैं भी वाचक! इस सौभाग्यग्रन्थको देखनेके लिये उत्सुक हूं। हमारे उरमें, कुलमें, जीवनमें जो अद्भुत कविताके पुष्पोद्यान उषाने लगाये है उनके काव्य उषा लिखेगी तो देवोंमें गाये जाने वाली कविता दुनिया को पढने को मिलेगी।

तो अब समाप्त? परन्तु ये कथनी कभी समाप्त हुई है या समाप्त होवेगी? कवि व्यतीत हो जॉय और कविता लुप्त हो जावे, रसिकता सूख जाय और विश्व, सहराके रणकी भांति, रसजलहीन हो जलने लगे, और, मनुष्योंके हृदयके मधुपात्र मधुहीन होकर बन्द हो जॉय तब कहीं यह कथनी समाप्त हो जाय तो को जाने! इस नर नारी की कथा की समाप्तिका अभी तो भय नहीं है। चन्द्रकलाके एसी